सूचित करने योग्य

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

सिविल अपीलीय अधिकारिता

सिविल अपील संख्या 5875/1994

कृष्ण कुमार सिंह और अन्य अपीलकर्त्ता

बनाम्

बिहार राज्य एवं अन्य उत्तरदाता

के साथ

सिविल अपील संख्या 5876-5890/1994

के साथ

रिट याचिका (सी) संख्या 580/1995

और

सिविल अपील सं. 3533-3595/1995

भारत का संविधान:

अनुच्छेद 213 एक के बाद एक अध्यादेशों का प्रख्यापन लेकिन उनमें से कोई भी विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया वर्तमान मामले में, बिहार के राज्यपाल ने राज्य में 429 संस्कृत विद्यालयों को अपने अधीन करने के लिए एक अध्यादेश प्रख्यापित किया - विद्यालय के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की सेवाएं कुछ शर्तों के अधीन राज्य सरकार को हस्तांतरित मानी जानी थीं पहले अध्यादेश के बाद अध्यादेशों का एक क्रम जारी किया गया अनुच्छेद 213 के तहत राज्यपाल की शक्ति के प्रयोग में जारी किए गए अध्यादेशों में से कोई भी अध्यादेश आदेशानुसार विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया अध्यादेशों की वैधता - अभिनिर्धारित किया: मुद्दे पर प्रत्येक अध्यादेश संवैधानिक शक्ति पर धोखाधड़ी है। ये

अध्यादेश जो राज्य विधानमंडल के समक्ष कभी नहीं रखे गए थे और डीसी वाधवा में सर्वोच्च न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय का उल्लंघन करते हुए पुनः प्रख्यापित किए गए थे, किसी भी कानूनी प्रभाव और परिणामों से रहित थे। अध्यादेशों ने स्कूलों के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को कोई अधिकार नहीं दिया या उन्हें सरकारी कर्मचारियों का दर्जा नहीं दिया। हालाँकि, उच्च न्यायालय के निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुसार अध्यादेशों के कार्यकाल के दौरान भुगतान किए गए वेतन के संबंध में, किसी भी कर्मचारी से कोई वसूली नहीं की जाएगी - अध्यादेश राज - बिहार गैर-सरकारी संस्कृत विद्यालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अध्यादेश, 1989-सेवा कानून। (बहुमत के अनुसार)

अनुच्छेद 213 विधानमंडल के अवकाश के दौरान अध्यादेशों का प्रख्यापन के तहत अवश्यकता अभिनिर्धारित किया: अध्यादेशों को प्रख्यापित करने के लिए राज्यपाल को जो अधिकार दिया गया है वह दो आवश्यकताओं के अधीन - पहली यह है कि अध्यादेश केवल तभी प्रख्यापित किया जा सकता है जब राज्य विधानमंडल सत्र में न हो - दूसरी आवश्यकता यह है कि अध्यादेश जारी करने से पहले राज्यपाल को तत्काल कार्रवाई करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट होना होगा राज्यपाल को तत्काल कार्रवाई करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट होना आवश्यक है - आवश्यकता को केवल वांछनीयता से अलग किया जाता है अभिव्यक्ति "आवश्यकता" के साथ "तत्काल कार्रवाई" शब्द का अर्थ यह है कि विधानमंडल के सत्र में न होने की अवधि के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करना किसी आकस्मिक स्थिति के कारण अनिवार्य है - ये दोनों आवश्यकताएँ राज्यपाल की शक्ति को स्पष्ट रूप से अधिदेशित सीमाओं के भीतर अध्यादेश बनाने तक सीमित करने के संवैधानिक इरादे को इंगित करती हैं। (बहुमत के अनुसार)

निर्णय

मदन बी. लोकुर, न्यायमूर्ति

1. भाई चंद्रचूड़ द्वारा तैयार किए गए विद्वतापूर्ण निर्णय को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद, मुझे इस बात से सहमत होने में अपनी असमर्थता पर खेद है कि किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा

राज्य विधानमंडल के समक्ष एक अध्यादेश को रखना संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत अनिवार्य है और राज्य विधानमंडल के समक्ष एक अध्यादेश को रखने में विफलता के परिणामस्वरूप अध्यादेश का अधिनियमित कानून के रूप में कोई प्रभाव नहीं होगा और इसका कोई परिणाम नहीं होगा। मेरी राय में ऐसा नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत राज्य विधानमंडल की विधानसभा के समक्ष एक अध्यादेश लाने के लिए अनिवार्य किया गया है, न ही ऐसा करने में विफलता के परिणामस्वरूप अध्यादेश का अधिनियमित कानून के रूप में बल और प्रभाव नहीं होगा या इसका कोई परिणाम नहीं होगा।

2. मेरी राय में अध्यादेश किसी नागरिक के स्थायी या अपरिवर्तनीय अधिकार का सृजन नहीं कर सकता। परिणामतः और सम्मान के साथ, इस न्यायालय द्वारा उड़ीसा राज्य बनाम भूपेंद्र कुमार बोस और टी. वेंकट रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य को पलटने की आवश्यकता है। इसके इन फैसलों को दरकिनार करते हुए, मैं भाई चंद्रचूड़ से सहमत हूं, हालांकि मेरे कारण अलग हैं।

3. जहां तक किसी अध्यादेश के पुनः प्रख्यापन का संबंध है, मेरी राय है कि किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा किसी अध्यादेश का पुनः प्रख्यापन संविधान के साथ धोखाधड़ी नहीं है। किसी अध्यादेश को फिर से लागू करने की आवश्यकता हो सकती है। तथापि, किसी अध्यादेश का पुनः प्रख्यापन एक यांत्रिक कवायद नहीं होनी चाहिए और यह राज्यपाल की जिम्मेदारी है कि वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि किसी अध्यादेश को प्रख्यापित करने या पुनः प्रख्यापित करने के लिए ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है।

4. अंत में, मेरा विचार है कि बिहार राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित पहले तीन अध्यादेशों को कर्मचारियों द्वारा किसी चुनौती के अभाव में, उनकी वैधता मान ली जानी चाहिए। नतीजतन, हालांकि इन तीन अध्यादेशों को निरस्त किया जा सकता है, कर्मचारी तब तक उनके तहत लाभ के हकदार होंगे जब तक कि वे काम करना बंद नहीं कर देते और इन तीन अध्यादेशों के तहत कर्मचारियों द्वारा प्राप्त लाभ न्यायोचित हैं। तथापि, ये तीनों अध्यादेश कर्मचारियों को कोई स्थायी या अपरिवर्तनीय अधिकार या लाभ प्रदान नहीं करते हैं। कर्मचारियों द्वारा एक विशिष्ट चुनौती के बावजूद बिहार राज्य द्वारा चौथे और बाद के अध्यादेशों की घोषणा को पर्याप्त रूप से उचित नहीं ठहराया गया है और इसलिए उन्हें उच्च

न्यायालय द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिया गया है। इसलिए, मैं अध्यादेशों की वैधता के मुद्दे पर भाई चंद्रचूड़ से आंशिक रूप से सहमत हूं।

5. इन अपीलों से संबंधित तथ्यों का ब्यौरा भाई चंद्रचूड़ द्वारा दिया गया है और उन्हें दोहराना आवश्यक नहीं है। यह कहने की आवश्यकता है कि संविधान के अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्य के राज्यपाल में निहित होगी और वह इसका प्रयोग सीधे या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से संविधान के अनुसार करेगा। संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक विधानमंडल होगा जिसमें राज्य के राज्यपाल होंगे और कुछ राज्यों के मामले में दो सदन और अन्य राज्यों में एक सदन होगा। जहां विधानमंडल के दो सदन हैं, वहां एक विधान परिषद के रूप में जाना जाएगा और दूसरा विधान सभा के रूप में जाना जाएगा। हम बिहार राज्य के बारे में चिंतित हैं, जहां विधानमंडल के दो सदन हैं।

<u>अध्यादेश की घोषणा</u>

6. संविधान के अनुच्छेद 213 में यह उपबंध है कि जब राज्य के राज्यपाल यह आश्वस्त हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो जाता है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है जो उसे परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों। हालांकि, यह अपवाद के अधीन है कि राज्यपाल विधानसभा के दोनों सदनों के सत्र के दौरान अध्यादेश जारी नहीं कर सकते हैं। किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा अपनी मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर एक अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है और वह अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करता है। किसी अध्यादेश का संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के संदर्भ में वही बल और प्रभाव होता है जो राज्यपाल द्वारा स्वीकृत राज्य विधानमंडल के अधिनियम का होता है। संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के खंड (क) में यह प्रावधान है कि ऐसा प्रत्येक अध्यादेश राज्य की विधान सभा के समक्ष या जहां राज्य में विधान परिषद है वहां दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा और विधानमंडल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले विधान सभा द्वारा इसे अननुमोदित करने वाला संकल्प पारित कर दिया जाता है और विधान परिषद, यदि कोई हो, द्वारा संकल्प पारित किए जाने पर या परिषद द्वारा संकल्प पर सहमति व्यक्त किए जाने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा।संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के खंड (ख) में यह

प्रावधान है कि राज्यपाल किसी भी समय अध्यादेश को वापस ले सकता है।संविधान के अनुच्छेद 213 (2) का एक स्पष्टीकरण है लेकिन हमारा इससे कोई सरोकार नहीं है।

7. इन अपीलों में कोई विवाद नहीं है कि बिहार के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 213 (1) के तहत अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए आठ अध्यादेशों (एक के बाद एक और एक विषय पर) को प्रख्यापित किया। इनमें से कोई भी अध्यादेश विधानसभा या विधान परिषद के समक्ष नहीं रखा गया था।

8. इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण है कि किसी अध्यादेश का प्रख्यापन एक विधायी कार्य है और किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा केवल कार्यपालिका की सहायता और सलाह पर ही अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है, फिर भी राज्यपाल को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है। राज्य विधानमंडल की अध्यादेश जारी करने या किसी अध्यादेश के तहत की गई कार्रवाई में कोई भूमिका नहीं है-यह अध्यादेश कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में आता है। राज्य विधानमंडल राज्यपाल के माध्यम से कार्यपालिका द्वारा शक्ति के प्रयोग पर नियंत्रण रखता है। यह एक अध्यादेश को अस्वीकृत करने वाले प्रस्ताव द्वारा किया जाता है। राज्य विधानमंडल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह सुनिश्चित करे कि कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण बना रहे और यह भी उम्मीद की जाती है कि राज्यपाल से अध्यादेश जारी करने की अपेक्षा करते हुए कार्यपालिका संवैधानिक सीमा का अतिक्रमण न करे और विधायिका की शक्तियों का अतिक्रमण न करे।

9. संविधान का अनुच्छेद 213 यह अपेक्षा नहीं करता है कि विधान मंडल अध्यादेश को मंजूरी दे-संविधान का अनुच्छेद 213 (2) केवल अध्यादेश को अस्वीकृत करने वाले प्रस्ताव को संदर्भित करता है। यदि किसी अध्यादेश को राज्य विधानमंडल के प्रस्ताव द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है, राज्य विधानमंडल, यह संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) में उपबंधित रूप में कार्य करना बंद कर देता है।यदि किसी अध्यादेश को अस्वीकृत नहीं किया जाता है, तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि इसे अनुमोदित कर दिया गया है। इसका अर्थ केवल यह है कि अध्यादेश को राज्य विधानमंडल द्वारा अस्वीकृत नहीं किया गया है, न ही इससे अधिक और न ही इससे कम।

10. संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) में यथावर्णित संकल्प द्वारा किसी अध्यादेश के अननुमोदन की अवधारणा का विरोध संविधान के अनुच्छेद 352 (4) के साथ किया जा सकता है जहां संविधान के अनुच्छेद 352 (1) के अधीन जारी उद्घोषणा के अनुमोदन का सकारात्मक कार्य आवश्यक है। इसी प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 356 (1) के तहत जारी उद्घोषणा के अनुमोदन का एक सकारात्मक कार्य संविधान के अनुच्छेद 356 (3) के तहत आवश्यक है। संविधान के अनुच्छेद 360 के तहत जारी की गई उद्घोषणा की ओर भी ध्यान दिलाया जा सकता है, जिसके लिए संविधान के अनुच्छेद 360 (2) के तहत अनुमोदन की आवश्यकता होती है। अतः संविधान में किसी अध्यादेश (उदाहरण के लिए) की अस्वीकृति और उद्घोषणा (उदाहरण के लिए) की स्वीकृति के बीच एक सचेत विभेद किया गया है और इस विभेद को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि मेरा विचार है कि किसी अध्यादेश की केवल अस्वीकृति को संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) द्वारा अभिनिर्धारित किया जाता है और किसी अध्यादेश का अनुमोदन संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) द्वारा अभिनिर्धारित नहीं किया जाता है।

11. किसी अध्यादेश की अस्वीकृति की अभिव्यक्ति विधान सभा के किसी एक सदस्य की प्रेरणा पर की जा सकती है। बिहार विधान सभा में प्रक्रिया और कार्य संचालन यदि राज्य विधानमंडल संकल्प द्वारा किसी अध्यादेश को अस्वीकृत कर देता है तो वह प्रवर्तन में नहीं रह जाता है। हमारे सामने एक महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि क्या किसी अध्यादेश के लागू होने के बाद उस अध्यादेश के तहत की गई कार्रवाई और लेन-देन बचे रहेंगे।

<u>अध्यादेश लागू होने के बाद</u>

12. इस पृष्ठभूमि में, कार्यपालिका की प्रेरणा पर किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा एक अध्यादेश के प्रख्यापन के बाद, संविधान में तीन संभावित परिदृश्यों की परिकल्पना की गई है।

(क) सर्वप्रथम, संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) की प्रतीयमान आज्ञापक भाषा के बावजूद, कार्यपालिका राज्य विधानमंडल की विधान सभा के समक्ष अध्यादेश नहीं रख सकती।प्रश्न यह है किःक्या किसी अध्यादेश को विधान सभा के समक्ष रखना वास्तव में अनिवार्य है और यदि ऐसा नहीं किया गया तो उसका क्या परिणाम होगा?

(ख) दूसरा, कार्यपालिका संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ख) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए राज्य के राज्यपाल को किसी भी समय अध्यादेश को वापस लेने की सलाह दे सकती है। इस परिदृश्य में, क्या यह अभी भी अनिवार्य है कि अध्यादेश को विधानसभा के समक्ष रखा जाए?

(ग) तीसरा, कार्यपालिका, संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) के अनुसार, राज्य विधानमंडल की विधान सभा के समक्ष एक अध्यादेश रख सकती है। इसके बाद क्या हो सकता है?

मैं प्रत्येक संभावित परिदृश्य से निपटने का प्रस्ताव करता हूं।

<u>पहला परिदृश्य</u>

13. जहां तक प्रथम परिदृश्य का संबंध है, अर्थात्, कार्यपालिका द्वारा विधान सभा के समक्ष कोई अध्यादेश नहीं रखा गया है, भाई चंद्रचूड़ ने यह मत व्यक्त किया है कि संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) के पाठ के पठन पर राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित एक अध्यादेश राज्य विधान मंडल के समक्ष अनिवार्य रूप से रखा जाएगा।सम्मान के साथ, मैं इस विचार को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

14. संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) में यह प्रावधान है कि कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले राज्य विधानमंडल द्वारा इसे अस्वीकृत करने वाला संकल्प पारित कर दिया जाता है तो वह लागू नहीं होगा। राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छः सप्ताह की समाप्ति पर कोई अध्यादेश न तो लागू होता है और न ही राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश रखने से संबंधित है। अतः कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाए या न रखा जाए, संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) के उपबंध लागू हो जाते हैं और राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की समाप्ति पर अध्यादेश लागू नहीं होगा। संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) के मूल पाठ की व्याख्या पर, विधान सभा का एक ही परिणाम होता है, वह यह है कि राज्य विधान मंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की समाप्ति पर अध्यादेश निष्प्रभावी हो जाएगा। हालांकि मैं इस बात से सहमत हूं कि राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश को फिर से इकट्ठा न करना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण, नैतिक और नैतिक रूप से होगा, लेकिन इस तरह से अध्यादेश को लागू करना अनिवार्य नहीं है।

15. इस संदर्भ में, क्या संविधान अध्यादेश के प्रवर्तन में न रहने के अलावा किसी अन्य परिणाम का उपबंध करता है? मेरी राय में, उत्तर है नहीं। यदि कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो यह अमान्य या शून्य नहीं हो जाता है। तथापि, यह मत व्यक्त किया गया है कि यदि कोई अध्यादेश विधान सभा के समक्ष बिल्कुल भी प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो उसका वही बल और प्रभाव नहीं हो सकता है जो अधिनियमित कानून का होता है और उसका कोई महत्व नहीं होगा।इस दृष्टिकोण से कानून के रूप में अध्यादेश का प्रभाव भविष्य में होने वाली अनिश्चित घटना पर निर्भर करता है, जो कि अध्यादेश को विधानसभा के समक्ष रखने पर निर्भर करता है। मुझे डर है कि कानून का बल और प्रभाव अनिश्चितता और भविष्य की घटना पर निर्भर नहीं कर सकता है, जब तक कि कानून खुद ऐसा नहीं करता है। किसी अध्यादेश के प्रख्यापन पर या तो कानून का प्रभाव पड़ता है या नहीं-संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत कार्यपालिका क्या कदम उठा सकती है या नहीं उठा सकती है, इस पर कोई आधा सदन निर्भर नहीं है।

16. संविधान का अनुच्छेद 213 (2) एक अर्थ में असंगत है-पहला भाग यह घोषणा करता है कि इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का बल और प्रभाव राज्य के विधान-मंडल द्वारा अनुमोदित अधिनियम के समान होगा। राज्यपाल और विधान सभा के समक्ष अध्यादेश रखने की अपेक्षा करने वाला दूसरा भाग। पहले भाग को सशर्त या दूसरे भाग के प्रदर्शन पर निर्भर होने के रूप में पढ़ना मेरे लिए संभव नहीं है, अर्थात् यह कहना कि यदि अध्यादेश इस तरह से लागू नहीं किया गया है, तो इसका प्रभाव कानून पर नहीं पड़ेगा। संविधान के अनुच्छेद 213 (2) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस निर्माण का सुझाव दे।

17. यदि विधान सभा के समक्ष न रखे गए अध्यादेश का कोई प्रभाव और बल नहीं है तो क्या वह प्रारंभ से ही शून्य होना चाहिए या क्या वह उस तारीख से शून्य होगा जिसको उसे विधान सभा के समक्ष या किसी अन्य तारीख को रखा जाना अपेक्षित है? यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है और यह विचार कि अध्यादेश का कोई महत्व नहीं होगा, एक और अनिश्चितता पैदा करता है-अध्यादेश को विधानसभा के समक्ष कब रखा जाना चाहिए-तुरंत इसके पुनर्गठन पर या बाद की तारीख पर और किस तारीख से यह शून्य हो जाता है?

18. संविधान के अनुच्छेद 213 (3) में केवल उस आकस्मिक स्थिति का उपबंध है जब कोई अध्यादेश शून्य हो।यह प्रावधान यह सुझाव नहीं देता है कि कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया तो वह अमान्य हो जाएगा। हमारे संविधान के

निर्माता इस बात के प्रति पूरी तरह सचेत थे कि एक अध्यादेश जो शून्य है (संविधान के अनुच्छेद 213 (3) के तहत) और एक अध्यादेश जो लागू नहीं होता है (संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत) के बीच का अंतर क्या है। यदि कोई अध्यादेश शून्य है, तो शून्य अध्यादेश के तहत की गई कोई भी कार्रवाई भी शून्य होगी। लेकिन यदि कोई अध्यादेश लागू नहीं होता है, तो अध्यादेश के तहत की गई कोई भी कार्रवाई यह अध्यादेश जारी होने के दौरान वैध होगा क्योंकि इसका प्रभाव कानून पर पड़ता है। अतः, स्पष्ट रूप से, संविधान के अनुच्छेद 213 के खंड (2) और खंड (3) के बीच का अंतर वास्तविक और मान्यता योग्य है और साथ ही एक अध्यादेश के बीच का अंतर जो शून्य है और एक अध्यादेश जो लागू नहीं होता है। एक विपरीत दृष्टिकोण इस अंतर को धुंधला कर देता है और प्रभावी रूप से किसी अध्यादेश को अन्यथा एक शून्य अध्यादेश में परिवर्तित कर देता है।मुझे डर है कि यह संविधान के अनुच्छेद 213 द्वारा प्रतिपादित नहीं है।

19. उपर्युक्त कारणों से, पाठ्य और अन्यथा, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के पठन पर यह अनिवार्य नहीं है कि कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल की विधान सभा के समक्ष रखा जाए। यह निष्कर्ष निकालते हुए कि संविधान राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश को विधान सभा के समक्ष रखना कार्यपालिका के लिए अनिवार्य नहीं बनाता है, मैं इस बात से सहमत हूं कि लंबे समय में हमारे लोकतंत्र के लिए इसका क्या अर्थ होगा-शायद राज्य विधानमंडलों को लोकतांत्रिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखने और कार्यपालिका पर अपनी संवैधानिक सर्वोच्चता का प्रयोग करने के लिए अधिक सतर्क और सक्रिय होने की आवश्यकता होगी।

20. विधान सभा का कोई सदस्य क्या कर सकता है यदि राज्य विधान मंडल के समक्ष कोई अध्यादेश नहीं रखा जाता है-क्या वह आश्रय के बिना है? जब कोई अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है तो यह सरकारी राजपत्र में मुद्रित होता है और इसलिए प्रत्येक विधायक इसके प्रख्यापन से अवगत होता है। जहां तक बिहार राज्य विधानमंडल का संबंध है, बिहार में प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के नियम 140 के तहत विधान सभा के सचिव द्वारा विधान सभा के सभी सदस्यों को अध्यादेश की एक मुद्रित प्रति उपलब्ध कराना भी अपेक्षित है। अतः, विधान सभा के पुनः समवेत होने पर, कोई भी सदस्य या तो सरकारी राजपत्र के आधार पर या विधान सभा के सचिव द्वारा उपलब्ध कराए गए अध्यादेश की मुद्रित प्रति के आधार पर अध्यादेश का अननुमोदन करने के लिए एक संकल्प प्रस्तुत कर सकता

है। नतीजतन, भले ही कार्यपालिका राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश नहीं रखती हो या विधान सभा के सचिव अध्यादेश की मुद्रित प्रति नहीं देते हों, विधानसभा का कोई सदस्य असहाय नहीं है। निश्चित रूप से, अध्यादेश को अस्वीकृत करने के लिए प्रस्ताव पेश करने का उनका अधिकार इस छल से नहीं छीना जा सकता है। विधान सभा के सदस्य का यह अधिकार राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश रखने वाली कार्यपालिका पर निर्भर नहीं किया जा सकता और न ही विधान सभा के समक्ष अध्यादेश न रखकर कार्यपालिका द्वारा इस अधिकार को छीना जा सकता है।

21. अतः राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश को अनिवार्य बनाए बिना भी संविधान कार्यपालिका द्वारा शक्ति के संभावित दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त नियंत्रण और संतुलन का उपबंध करता है।

दूसरा परिदृश्य

22. जहां तक दूसरे परिदृश्य का संबंध है, संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (बी) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए कार्यपालिका राज्य के राज्यपाल को किसी भी समय अध्यादेश को वापस लेने की सलाह देने की हकदार है। राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने या उसके पुनः समवेत होने के पश्चात् किंतु विधान सभा के समक्ष रखे जाने से पूर्व.किसी भी स्थिति में (विशेष रूप से बाद की स्थिति में) क्या यह कहा जा सकता है कि अध्यादेश को विधानसभा के समक्ष रखना अभी भी अनिवार्य होगा? मैं ऐसा नहीं सोचता। ऐसी स्थितियों में, राज्य विधानमंडल के समक्ष वापस लिए गए अध्यादेश को प्रस्तुत करने से शायद एक खाली औपचारिकता को पूरा करने के अलावा कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। हमारा संविधान खाली औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए नहीं बना है। यह यह मानने का एक अतिरिक्त कारण है कि कोई भी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है कि परिस्थितियों की परवाह किए बिना, एक अध्यादेश को अनिवार्य रूप से राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाएगा।

23. कार्यपालिका की प्रेरणा पर राज्यपाल द्वारा किसी अध्यादेश को वापस लेने के कारण, चाहे राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने से पहले या बाद में, वर्तमान चर्चा के लिए प्रासंगिक नहीं हैं और उन पर विचार करना आवश्यक नहीं है।

तीसरा परिदृश्य

24. तीसरा परिदृश्य वह है जहां कार्यपालिका संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (क) के अनुसार विधान सभा के समक्ष एक अध्यादेश प्रस्तुत करती है। अध्यादेश को नजरअंदाज किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप कोई भी इसकी अस्वीकृति के लिए प्रस्ताव पेश नहीं कर सकता है। उस स्थिति में यह अध्यादेश अपना स्वाभाविक कार्य करेगा और राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छः सप्ताह की समाप्ति पर अपना संचालन बंद कर देगा।

25. तथापि, यदि अध्यादेश की अस्वीकृति के लिए कोई संकल्प प्रस्तुत किया जाता है तो राज्य विधानमंडल संकल्प को अस्वीकार कर सकता है और उस स्थिति में भी अध्यादेश अपना स्वाभाविक कार्य कर सकता है और राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छः सप्ताह की समाप्ति पर उसका प्रवर्तन समाप्त हो जाएगा।

26. लेकिन यदि किसी अध्यादेश के अस्वीकृति के लिए एक प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता है और अध्यादेश को अस्वीकृत कर दिया जाता है, तो यह विधान सभा और विधान परिषद द्वारा पारित किए जा रहे प्रस्ताव पर संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) के प्रावधानों के आधार पर लागू नहीं होगा।

27. दूसरे शब्दों में, जब कोई अध्यादेश राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाता है तो अनेक संभावनाएं पैदा हो जाती हैं। राज्य विधानमंडल के निर्णय के आधार पर, कोई अध्यादेश समय के प्रवाह से व्यपगत हो सकता है और उसके बाद उसका प्रवर्तन समाप्त हो सकता है अथवा यदि अध्यादेश को अस्वीकृत करने वाला कोई प्रस्ताव पारित किया जाता है अथवा उसके स्थान पर कोई विधेयक लाया जा सकता है तो यह पहले ही निष्प्रभावी हो सकता है।

28. वास्तव में, राज्य में अध्यादेश के स्थान पर विधेयक लाने की स्थिति उत्पन्न हुई थी। उड़ीसा राज्य बनाम भूपेंद्र कुमार बोस भूपेंद्र कुमार बोस बनाम राज्य के साथ पढ़ें उड़ीसा की। उस मामले में, उड़ीसा के राज्यपाल द्वारा 15 जनवरी, 1959 को उड़ीसा नगरपालिका निर्वाचन विधिमान्यकरण अध्यादेश, 1959 (1959 का उड़ीसा अध्यादेश सं. 1) प्रख्यापित किया गया था। यह स्पष्ट नहीं है कि यह अध्यादेश राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा गया था या नहीं या इसे अस्वीकृत किया गया था, लेकिन किसी भी स्थिति में तत्कालीन सरकार ने इसे विधानसभा में पेश करने की कोशिश की थी। 23 फरवरी, 1959 को 'उड़ीसा

नगरपालिका निर्वाचन विधिमान्यकरण विधेयक, 1959' शीर्षक से एक विधेयक लाया गया। हालांकि, विधानसभा ने बहुमत से इसे पेश करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। बहुमत के इस निर्णय का अध्यादेश के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जो राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह बाद 1 अप्रैल, 1959 को समाप्त हो गया।

29. यह स्पष्ट है कि जब कोई विधेयक विधान सभा में पुरःस्थापित किया जाता है तो वह विधान सभा की संपत्ति बन जाता है और यह मानते हुए कि कोई अध्यादेश राज्य विधान मंडल के समक्ष रखा जाता है और एक संकल्प द्वारा अस्वीकृत किया जाता है, विधेयक पर अस्वीकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके विपरीत, यदि विधान सभा द्वारा किसी विधेयक को पेश करने से इंकार कर दिया जाता है अथवा विधान सभा में पुरःस्थापित किसी विधेयक को विफल कर दिया जाता है तो विधान सभा के समक्ष रखे गए उस अध्यादेश पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जो तब तक लागू रहेगा जब तक कि वह अस्वीकृत नहीं हो जाता अथवा विधान सभा के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि समाप्त होने पर उसका प्रवर्तन समाप्त नहीं हो जाता। किसी विधेयक को पारित किया जाए या नहीं या कानून बनाया जाए या नहीं, इसका निर्णय पूरी तरह से विधान सभा को करना है, चाहे अध्यादेश का भविष्य कुछ भी हो, जैसा कि भूपेंद्र कुमार बोस से स्पष्ट है या अन्यथा स्पष्ट है। इसी प्रकार, किसी अध्यादेश की अस्वीकृति का निर्णय पूरी तरह से विधानसभा और विधान परिषद को करना होता है, चाहे कोई विधेयक पेश किया गया हो या पेश किया जाना हो।

30. इस चर्चा का सार और सार निम्नलिखित हैः (i) कोई अनिवार्य अपेक्षा नहीं है कि निम्नलिखित पर विधान सभा के समक्ष एक अध्यादेश रखा जाना चाहिए। किसी अध्यादेश का भाग्य, चाहे वह विधान सभा के समक्ष रखा गया हो या नहीं, पूर्णतया संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ख) के उपबंधों द्वारा और विधान सभा द्वारा शासित होता है।किसी अध्यादेश के प्रख्यापन के बाद उसके भाग्य पर कार्यपालिका का सीमित नियंत्रण संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (बी) के तहत राज्य के राज्यपाल द्वारा इसे वापस लिए जाने के कारण होता है-शेष नियंत्रण राज्य विधानमंडल के पास होता है जो राज्य का विधि निर्माण निकाय है।

<u>एक अध्यादेश के तहत संपन्न लेन-देन का प्रभाव</u>

31. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में और हमारे सामने मौजूद तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान अपीलों में उत्पन्न होने वाला मुद्दा किसी अध्यादेश के तहत उसके विधान सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने के कारण या राज्य के राज्यपाल द्वारा अस्वीकृत किए जाने या इसे वापस लिए जाने से पहले उसके प्रभाव या परिणामों या कार्यों और संव्यवहारों के अस्तित्व से भी संबंधित है।

32. जब किसी अध्यादेश को राज्य विधानमंडल में पुरःस्थापित विधेयक द्वारा प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया जाता है, तो यह पूरी तरह से राज्य विधानमंडल पर निर्भर करता है कि क्या अध्यादेश के तहत की गई कार्रवाई को बचाया गया है या नहीं या कार्रवाई नहीं की गई है लेकिन निष्कर्ष नहीं निकाला गया है, यह जारी रहेगा या जारी नहीं रहेगा। संवैधानिक रूप से अस्थायी होने के कारण, एक अध्यादेश, एक अस्थायी अधिनियम के विपरीत, किसी भी बचत खंड या आकस्मिकता का प्रावधान नहीं कर सकता है।यहां तक कि यदि कोई अध्यादेश काल्पनिक रूप से इस तरह के बचत खंड का प्रावधान कर सकता है, तो राज्य विधानमंडल इसे स्वीकार नहीं कर सकता है, क्योंकि कोई विधेयक राज्य विधानमंडल द्वारा पेश किया गया है। वर्तमान सरकार राज्य विधानमंडल की संपत्ति है और यह पूरी तरह से राज्य विधानमंडल पर निर्भर करता है कि वह अधिनियम की विषय-वस्तु का निर्णय करे।

33. जब कोई अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहेगा तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस तारीख को यह प्रवर्तन में नहीं रहेगा उस तारीख को सभी कार्रवाइयां समाप्त हो जाएंगी। ऐसा केवल इसलिए है क्योंकि जब अध्यादेश का प्रवर्तन समाप्त हो जाता है, तो यह भी राज्य के राज्यपाल द्वारा अनुमोदित अधिनियम के समान प्रभाव और प्रभाव को समाप्त कर देता है और इसलिए पाइपलाइन कार्रवाई बिना किसी कानूनी आधार के जारी नहीं रह सकती है। स्वाभाविक रूप से, अध्यादेश के आधार पर शुरू किए जाने वाले सभी कार्य अध्यादेश के लागू होने के बाद शुरू नहीं किए जा सकते हैं। क्या अध्यादेश के लागू होने के समाप्त होने से पहले की गई कार्रवाई या लेन-देन अंतिम तिथि के बाद भी जारी रहेंगे?

34. जहां तक राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित अधिनियम का संबंध है, इसके निरसन के परिणाम का मूल्यांकन करने में कोई कठिनाई नहीं है। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 विधायिका द्वारा पारित अधिनियम के निरसन के प्रभाव के बारे में काफी स्पष्ट है।

35. जहां तक एक अस्थायी अधिनियम का संबंध है, उसके जीवन के दौरान की गई कार्रवाई लेकिन इसे समाप्त करने से पहले समाप्त नहीं की गई कार्रवाई (पाइपलाइन लेनदेन) उसके बाद जारी नहीं रहेगी क्योंकि उन कार्यों और लेनदेन को किसी भी मौजूदा कानून द्वारा समर्थन नहीं दिया जाएगा। हालांकि, इस तरह की स्थिति में उत्पन्न होने वाली किसी भी कठिनाई को दूर करने के लिए, एक अस्थायी अधिनियम इस तरह की कार्रवाइयों और लेनदेन को जारी रखने का प्रावधान कर सकता है। इसका कारण यह है कि एक अस्थायी अधिनियम विधायिका द्वारा अधिनियमित किया जाता है और इसमें निश्चित रूप से ऐसी घटनाओं को पूरा करने की शक्ति है। अतः, यदि इसके विपरीत कोई अनुज्ञेय उपबंध है तो पाइपलाइन संव्यवहार अस्थायी अधिनियम के जीवन में जीवित रह सकता है। ऐसी घटना विशेष रूप से एस. कृष्णन बनाम मद्रास राज्य वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष विचारार्थ आई।6 उस मामले में, निवारक निरोध अधिनियम, 1950 (एक अस्थायी अधिनियम जो 1 अप्रैल, 1951 को प्रभावी नहीं रहेगा, सिवाय उन बातों के जो उस तारीख से पहले की गई थीं या करने से छूट गई थीं) को निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा संशोधित किया गया था।निवारक निरोध अधिनियम, 1950 की अवधि को 1 अप्रैल, 1952 तक बढ़ाकर डिटेनस की निवारक निरोध अवधि (जैसे कि उसमें याचिकाकर्ता जो पहले से निरोध में थे) को एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष कर दिया गया।

36. एक प्रश्न जो उस मामले में इस न्यायालय के विचार के लिए उठाया गया था वह यह था कि क्या किसी व्यक्ति का निवारक निरोध, उदाहरण के लिए 21 फरवरी, 1951 को (जैसा कि कुछ याचिकाकर्ताओं के मामले में था) संशोधन अधिनियम के आधार पर 31 मार्च, 1951 (या 1 अप्रैल, 1951) के बाद भी जारी रह सकता है, जब अस्थायी अधिनियम जिसके तहत उन्हें हिरासत में लिया गया था, यदि संशोधन अधिनियम न होता, तो 1 अप्रैल, 1951 से लागू नहीं होता। इसमें संशोधन अधिनियम की धारा 12 की व्याख्या और संवैधानिक वैधता शामिल है जो इस प्रकार हैः

> "शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है -
>
> (क) निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम, 1951 के प्रारंभ पर प्रवृत्त प्रत्येक निरोध आदेश प्रवृत्त बना रहेगा और प्रभावी होगा मानो यह निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा यथा संशोधित इस अधिनियम के अधीन बनाया गया हो।

> (ख) धारा 1 की उपधारा (3) या मूल रूप से अधिनियमित इस अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात से ऐसे किसी आदेश की विधिमान्यता या अवधि प्रभावित नहीं होगी।"

37. इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने (मुख्य न्यायमूर्ति हरिलाल कानिया के साथ सहमति व्यक्त करते हुए) यह मत व्यक्त किया कि संशोधन अधिनियम के कारण निवारक निरोध को जारी रखने की अवधि बढ़ाई जा सकती है और 31 मार्च, 1951 के बाद लगातार निवारक निरोध वैध है।कहा गया थाः

> "एक अस्थायी कानून के संबंध में सामान्य नियम यह है कि इसके विपरीत विशेष प्रावधान के अभाव में, इसके तहत व्यक्ति के खिलाफ जो कार्यवाहियां की जा रही हैं, वे कानून की अवधि समाप्त होते ही स्वतः समाप्त हो जाएंगी (कानून पर दावों, चौथा संस्करण, पृष्ठ 347)।निवारक निरोध, जो इसे अधिकृत करने वाले अधिनियम के बिना एक निरंतर गलत होगा, इसलिए, अवधि समाप्त होने के बाद भी जारी नहीं रखा जा सकता है। अधिनियम की स्वयं की।इस प्रकार नए अधिनियम में यह प्रावधान करते हुए कि यह एक निर्दिष्ट तारीख को प्रभावी नहीं रहेगा, इसके तहत अधिकतम हिरासत अवधि निर्धारित की गई है।"
>
> [जोर दिया गया]

38. न्यायमूर्ति महाजन (न्यायमूर्ति एस. आर. दास की सहमति से) ने भी यह निश्चित मत व्यक्त किया कि किसी अस्थायी अधिनियम की अवधि समाप्त होने के बाद उसके तहत आगे कुछ नहीं किया जा सकता।यह निम्नलिखित रूप में आयोजित किया गयाः

> "यह बताया जा सकता है कि संसद ने यह सोचा होगा कि नए कानून में नजरबंदी की किसी भी अधिकतम अवधि को निर्धारित करना अनावश्यक था, जो एक अस्थायी प्रकृति का था और जिसका अपना कार्यकाल था" यह एक वर्ष तक सीमित है। ऐसे अस्थायी कानूनों की अवधि समाप्त होने के बाद उनका कोई प्रभाव नहीं रह जाता है, वे उस अवधि की समाप्ति पर स्वतः समाप्त हो जाते हैं जिसके लिए वे अधिनियमित किए गए हैं और आगे कुछ भी नहीं हो सकता है। उनके

> अधीन किया जाए।इसलिए याचिकाकर्ताओं का निरोध कानून की अवधि के साथ स्वतः समाप्त हो जाएगा और इन परिस्थितियों में संसद ने सोचा होगा कि इस कानून के तहत हिरासत में लिए गए लोगों के लिए अधिकतम अवधि का प्रावधान करना पूरी तरह से अनावश्यक होगा।"
>
> [जोर दिया गया]

39. इसके बाद, यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि संशोधन अधिनियम विधिमान्य था, इसलिए याचिकाकर्ता केवल इस आधार पर निर्मुक्त करने के हकदार नहीं थे कि निवारक निरोध अधिनियम, 1950 में उल्लिखित एक वर्ष की अवधि समाप्त हो गई थी।

40. न्यायमूर्ति विवियन बोस ने बहुमत के विचारों से असहमति व्यक्त की और अभिनिर्धारित किया कि अस्थायी अधिनियम की समाप्ति के परिणामस्वरूप निवारक नजरबंदी समाप्त नहीं होगी।विद्वत न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित कियाः

> ".....मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि अधिनियम की समाप्ति के साथ ही ये नजरबंदी समाप्त हो जाएगी। अस्थायी अधिनियमों के मामले में नियम यह है कि-
>
> > "एक सामान्य नियम के रूप में, और जब तक इसमें कुछ विशेष प्रावधान न हों, इसके विपरीत, किसी अस्थायी अधिनियम की अवधि समाप्त हो जाने के बाद उस पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती और उसका कोई और प्रभाव नहीं रह जाता है। इसलिए, अस्थायी अधिनियमों के खिलाफ किए गए अपराधों पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और अधिनियम के समाप्त होने से पहले उन्हें दंडित किया जाना चाहिए।(क्रेज ऑन स्टैच्यूट लॉ, चौथा संस्करण, पृष्ठ 347)।
>
> लेकिन ऐसे लेन-देन जो अधिनियम की अवधि समाप्त होने से पहले ही पूरे हो जाते हैं, उनकी अवधि समाप्त होने के बावजूद जारी है।देखिए क्रेज ऑन स्टेच्यूट लॉ, पृष्ठ 348 और 31 हाल्सबरी लाज ऑफ इंग्लैंड (हैलशम संस्करण), पृष्ठ 513। मैं इसका अर्थ यह मानता हूं कि यदि

> किसी व्यक्ति पर किसी अस्थाई अधिनियम द्वारा सृजित अपराध के लिए मुकदमा चलाया जाता है और वह दोषी पाया जाता है और उसे पांच वर्ष के कारावास की सजा सुनाई जाती है तो उसे अपनी सजा काटनी होगी, भले ही यह अधिनियम अगले दिन समाप्त हो जाए। मेरी राय में, निम्नलिखित के मामले में स्थिति समान है नजरबंदी। एक व्यक्ति, जिसे एक अस्थायी निरोध अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया गया है और एक विशेष अवधि के लिए वैध रूप से हिरासत में रखने का आदेश दिया गया है, वह अधिनियम के कारण अपने समय से पहले पहले ही समाप्त हो चुकी पहले रिहाई का दावा करने का हकदार नहीं होगा।"
>
> [जोर दिया गया]

41. अतः, यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय के बहुमत का यह मत था कि ऐसा कुछ भी नहीं किया गया जो अस्थायी अधिनियम की समाप्ति के बाद जीवित रहेगा, जब तक कि इसके विपरीत कोई उपबंध या बचत खंड न हो या जब तक अस्थायी अधिनियम का जीवन कानूनी रूप से विस्तारित न हो। क्या यह निष्कर्ष अध्यादेश पर भी लागू होता है? यह याद रखा जाना चाहिए कि किसी अध्यादेश का बल और प्रभाव वही होता है जो राज्यपाल द्वारा अनुमोदित राज्य विधानमंडल के अधिनियम का होता है [संविधान का अनुच्छेद 213 (2)] किंतु यह विधानमंडल का अधिनियम नहीं है-यह विधानमंडल का अस्थायी अधिनियम भी नहीं है।

42. इस प्रश्न पर भूपेन्द्र कुमार बोस में विचार किया गया और इस मुद्दे पर निर्णय करते समय, इस न्यायालय ने तीन अंग्रेजी निर्णयों का उल्लेख किया-वारेन बनाम विन्डल, स्टीवेन्सन बनाम ओलिवर और विक्स बनाम निदेशक, लोक अभियोजन ।

43. वारेन में न्यायालय का निर्णय यह था कि जहां कोई कानून किसी पूर्व विधि को पूर्णतया निरसित करने का दावा करता है और उसी विषय पर अन्य उपबंधों को प्रतिस्थापित करता है, जो केवल एक निश्चित समय तक जारी रहने तक सीमित हैं, वहां निरस्तीकरण कानून के बीतने के बाद पूर्व विधि तब तक पुनर्जीवित नहीं होती है जब तक कि उस आशय के लिए विधानमंडल का आशय व्यक्त नहीं किया जाता है। इस संदर्भ में मुख्य न्यायाधीश लार्ड एलनबरो ने कहा था कि किसी कानून के कुछ प्रावधानों में अस्थायी होने के बावजूद वह

अन्य मामलों में स्थायी रूप से लागू हो सकता है। स्टेट 26 भू. 3,सी. 108, निरसित करने का दावा करता है। 19 भू-कानून 2,35 पूर्णतया, यद्यपि इसके अपने उपबंध, जो इसके स्थान पर प्रतिस्थापित किए गए थे, केवल अस्थायी थे।

44. स्टीवेन्सन में अस्थाई कानून की अवधि 1 अगस्त, 1826 को समाप्त हो गई किंतु इस बीच किसी व्यक्ति को चिकित्सक/अत्तार के रूप में विधि व्यवसाय करने का अधिकार दिया गया।अस्थाई कानून में कोई बचत प्रावधान नहीं था और यह तर्क दिया गया था कि अस्थाई कानून की समाप्ति से उसके द्वारा सृजित सभी अधिकारों और दायित्वों का अंत हो जाएगा। इन व्यापक तथ्यों पर एक विद्वान न्यायाधीश (पार्के, बी) द्वारा यह मत व्यक्त किया गया कि कानून का निर्माण ही अवधारण कारक होगा।यह अभिनिर्धारित किया गयाः

> "फिर सवाल आता है कि क्या उस राज्य द्वारा दिए गए अभ्यास का विशेषाधिकार है। 6 प्रतिकृति में निर्दिष्ट भू-4 वह है जो उस कानून की समाप्ति के बावजूद जारी रहता है। यह निर्भर करता है कि अस्थायी अधिनियमिति का निर्माण.दोनों में अंतर है। अस्थाई कानून और कानून जो निरसित कर दिए गए हैं (सिवाय इसके कि वे पहले से ही उनके अधीन किए गए लेन-देन से संबंधित हैं) ऐसे हो जाते हैं जैसे कि वे कभी अस्तित्व में ही नहीं थे, लेकिन पहले के संबंध में, लगाए गए प्रतिबंधों की सीमा और प्रावधानों की अवधि निम्नलिखित के मामले हैं - निर्माण। इसलिए हमें इस अधिनियम पर गौर करना चाहिए और देखना चाहिए कि क्या 11 वें खंड में प्रतिबंध, कि कानून के प्रावधान केवल सीमित समय के लिए थे, इस विशेषाधिकार पर लागू होता है। ऐसा लगता है कि उन्होंने कहा कि विधायिका का अर्थ यह था कि सभी सहायक-सर्जन, जो 1 अगस्त, 1826 से पहले ऐसे थे, उन्हें चिकित्सक के रूप में अभ्यास करने के समान विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहिए।सी. जैसे कि वे 1 अगस्त, 1815 को वास्तविक व्यवहार में थे, और इस प्रकार उनका विशेषाधिकार निष्पादक प्रकृति का था, जो 1 अगस्त, 1826 के बाद प्रभावी होने में सक्षम था।" [जोर दिया गया]

45. विक्स में विरचित प्रश्न यह थाःक्या कोई व्यक्ति उस समय बरी होने का हकदार है जब वह साबित हो जाता है कि उसने उस समय रक्षा विनियम को तोड़ा है जब वह विनियम लागू

था, क्योंकि उसका परीक्षण और दोषसिद्धि विनियम के बाद होती है? क्या अवधि समाप्त हो चुकी है?इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह पाया गया कि यह प्रश्न आपात शक्ति (रक्षा) अधिनियम, 1939 की धारा 11 की उपधारा 3 के निर्वचन का विशुद्ध प्रश्न है।तब यह अभिनिर्धारित किया गया किः

> "धारा 11" "इस धारा के प्रावधानों के अधीन" "शब्दों के साथ शुरू होती है, और ये परिचयात्मक शब्द किसी को भी चेतावनी देने के लिए पर्याप्त हैं कि तुरंत अनुसरण करने वाला प्रावधान पूर्ण नहीं है, लेकिन निम्नलिखित द्वारा किसी तरह से योग्य होने जा रहा है।" इसलिए ऐसा नहीं है कि चुनी गई तारीख को, अधिनियम हर मायने में समाप्त हो जाता है। इस पर चर्चा किए बिना कि क्या मध्यवर्ती शब्द अर्हताएं हैं, उप-धाराएं। मेरी राय में 3 एक योग्यता है। यह इस अधिनियम की समाप्ति वाक्यांश के साथ शुरू होता है-एक संज्ञा जो क्रिया expire के साथ मेल खाती है- पहले की गई या किए जाने के लिए छोड़ी गई बातों के संबंध में उसके प्रचालन को प्रभावित करेगा।"
>
> इसलिए अपीलार्थियों के विद्वत वकील को बुद्धिमानी से बहस करने के लिए प्रेरित किया गया है, लेकिन ईमानदारी से स्वीकार करें, कि वे जो तर्क पेश कर रहे हैं, वह यह है कि वाक्यांश पहले किए गए अपराधों को शामिल नहीं करता है.मैं समझता हूं कि यह नजरिया सही नहीं हो सकता। यह यह स्पष्ट कर सकता है कि संसद का इरादा उप-धाराएं बनाने का नहीं था। शेष के साथ समाप्त होने के लिए 3 कानून में इसकी उपस्थिति एक ऐसा प्रावधान है जो समाप्ति की तारीख के बाद मुकदमा चलाने के अधिकार को संरक्षित करता है।" [जोर दिया गया]

46. इन तीनों मामलों में, अस्थायी कानून के निर्माण पर, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इसके उपबंध उसकी समाप्ति पर समाप्त नहीं होंगे। इस मामले पर विचार करने के बाद न्यायालय ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और पतंजलि शास्त्री न्या0 के इस विचार को स्वीकार किया कि एक अस्थायी अधिनियम की समाप्ति पर, सभी कार्रवाई और लेनदेन तब तक समाप्त हो जाते हैं जब तक कि अस्थायी अधिनियम में अन्यथा प्रावधान न हो। यह भूपेंद्र कुमार बोस के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हैः

> "यह सच है कि निरसन के प्रभाव के संबंध में सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के प्रावधान एक अस्थायी अधिनियम पर लागू नहीं होते हैं। इसके विपरीत विशेष प्रावधान की अनुपस्थिति में इसके तहत किसी व्यक्ति के खिलाफ जो कार्रवाई की जा रही है, वह कार्यवाहियां स्वतः ही समाप्त हो जाएंगी। कानून की अवधि समाप्त हो रही है।यही कारण है कि विधानमंडल अस्थायी कानून में एक बचत प्रावधान अधिनियमित करके ऐसे असंगत परिणाम से बच सकता है और अक्सर करता है, जिसका प्रभाव कुछ हद तक सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के समान है कि अनुच्छेद 213 (2) (क) द्वारा उक्त प्राधिकारी पर अधिरोपित स्पष्ट सीमा के कारण अध्यादेश बनाने वाले प्राधिकारी को ऐसा मार्ग अपनाने की स्वतंत्रता नहीं होगी।" [जोर दिया गया]

47. तथापि, इस न्यायालय ने दुर्भाग्य से अस्थायी अधिनियम (विधान मंडल द्वारा अधिनियमित) और अध्यादेश (विधान मंडल के सामने आने के बिना ही कार्यपालिका द्वारा प्रख्यापित) के बीच गुणात्मक विभेद की अनदेखी की और उनकी समानता की।उस समीकरण को सम्मान के साथ बनाकर, इस न्यायालय ने एक बुनियादी और गुणात्मक त्रुटियां की और सम्मान के साथ, गलती से अंग्रेजी निर्णयों पर भरोसा किया जो अस्थायी कानूनों से संबंधित हैं जिनकी व्याख्या उनके निर्माण पर निर्भर करती है।इस गलत समीकरण के परिणामस्वरूप, इस न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकालाः

> "इसलिए, किसी अस्थायी कानून की समाप्ति के प्रभाव पर विचार करते समय, कोई भी अपरिवर्तनीय नियम निर्धारित करना असुरक्षित होगा। अगर सही है तो कानून द्वारा सृजित स्थायी प्रकृति का है और उसने व्यक्ति में निहित किया है, उस अधिकार को छीना नहीं जा सकता क्योंकि जिस कानून द्वारा यह बनाया गया था वह समाप्त हो गया है। यदि कानून के तहत कोई दंड उपगत किया गया था और किसी व्यक्ति पर लगाया गया था, तो दंड का अधिरोपण कानून की समाप्ति तक जीवित रहेगा। इस मामले में यही सही कानूनी स्थिति प्रतीत होती है।" [जोर दिया गया]

48. अंग्रेजी निर्णय सिर्फ अस्थायी कानूनों के निर्माण से संबंधित थे, और कुछ नहीं।भूपेंद्र कुमार बोस को गोद लिया। अध्यादेश अंग्रेजी निर्णयों द्वारा दिए गए अस्थायी कानूनों का निर्माण करते हैं और हमारे न्यायशास्त्र में 'स्थायी अधिकार' सिद्धांत पेश करते हैं।

49. लेकिन, वर्तमान प्रयोजनों के लिए अधिक महत्वपूर्ण यह है कि हालांकि इस न्यायालय ने पतंजलि शास्त्री जे के विचारों को स्वीकार किया, अंत में एक अवलोकन किया गया था। संयोगवश, हमें यह जोड़ना चाहिए कि अध्यादेश बनाने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसा मार्ग अपनाना संभव नहीं है। किसी बचत प्रावधान को अस्थाई कानून के रूप में लागू करना, क्योंकि यह स्पष्ट है। अनुच्छेद 213 (2) (क) द्वारा उक्त प्राधिकारी पर अधिरोपित परिसीमा संविधान)। उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे अध्यादेशों में 'स्थायी अधिकारों' के सिद्धांत को शामिल करने में कुछ कठिनाई दिखाई देती है।

50. यह अवलोकन दो कारणों से महत्वपूर्ण हैः पहला, यह अस्थायी अधिनियम और अध्यादेश के बीच स्पष्ट अंतर को मान्यता देता है। दूसरा, यह मान्यता देता है कि किसी अस्थायी अधिनियम की समाप्ति के बाद जीवन हो सकता है, यदि उसमें कोई बचत प्रावधान शामिल किया जाता है, तो संविधान का अनुच्छेद 213 (2) (ए) संभवतः किसी अध्यादेश में स्थायी प्रभाव रखने वाले किसी प्रावधान को शामिल करने को आवश्यक निहितार्थ के साथ प्रतिबंधित करता है, जिसका परिणाम यह होता है कि किसी अध्यादेश के प्रवर्तन के समाप्त होने के बाद उसमें कोई जीवन नहीं हो सकता है।दूसरे शब्दों में, न तो कोई लंबित कार्रवाई या लेन-देन और न ही कोई अंतिम कार्रवाई या लेन-देन किसी अध्यादेश की समाप्ति की तारीख के बाद जीवित रह सकता है।अध्यादेशों से संबंधित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं।

<u>ऐतिहासिक पृष्ठभूमि</u>

51. भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 88 में किसी प्रांत के राज्यपाल को विधानमंडल के अवकाश के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान की गई है, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है।

52. गवर्नमेंट इंडिया एक्ट, 1935 की धारा 90 ने राज्यपाल को एक असाधारण शक्ति प्रदान की कि वह ऐसे उपबंधों से युक्त राज्यपाल अधिनियम अधिनियमित कर सकता है जो

वह आवश्यक समझे। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 की धारा 90 की उप-धारा (3) में यह प्रावधान है कि गवर्नर के अधिनियम का प्रभाव वही होगा जो गवर्नर द्वारा स्वीकृत प्रांतीय विधानमंडल के अधिनियम का होता है। दूसरे शब्दों में, राज्यपाल को अपनी विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक अध्यादेश (धारा 88) प्रख्यापित करने और एक अधिनियम (धारा 90) अधिनियमित करने की शक्ति प्राप्त थी।

53. भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 88 और धारा 90 के दो पृथक उपबंध होने का महत्व यह है कि इस अधिनियम ने अध्यादेश (सीमित जीवन) और अधिनियम (निरसन तक 'स्थायी' जीवन) के बीच अंतर को भी स्वीकार किया है।गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 की धारा 88 के अनुसार किसी अध्यादेश की शेल्फ लाइफ सीमित होती है और उसकी शेल्फ लाइफ समाप्त होने के बाद गवर्नर द्वारा स्वीकृत प्रांतीय विधानमंडल के अधिनियम के रूप में इसका कोई प्रभाव और प्रभाव समाप्त हो जाएगा। यदि राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश का प्रभाव उसकी अनिश्चित अवधि की समाप्ति के बाद भी बना रहता तो भारत सरकार एक्ट 1935 की धारा 90 को अधिनियमित करने का कोई अवसर नहीं होता। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 के तहत राज्यपाल को राज्यपाल अधिनियम लागू करने का अधिकार दिया गया है, क्योंकि अध्यादेश में उपयुक्त रूप से मसौदा तैयार किया गया बचत खंड भी इसी उद्देश्य को पूरा करेगा।

54. इस विशिष्टता की सराहना करते हुए, संविधान सभा ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 90 के तहत राज्यपाल को प्रदत्त एक अधिनियम बनाने की असाधारण शक्ति को समाप्त कर दिया। तथापि, इसने अध्यादेश की अस्थिरता को बरकरार रखा जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 213 के पठन से स्पष्ट है।संविधान के कुछ अन्य प्रावधानों के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेद 213 के पठन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि अनिश्चितता को बरकरार रखा गया है। उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 357 (2) (जैसा कि मूल रूप से तैयार किया गया है) में प्रावधान है कि संसद या राष्ट्रपति या कोई अन्य प्राधिकारी संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत जारी आपातकाल की घोषणा के दौरान कानून बनाने में राज्य विधानमंडल की शक्ति का उपयोग कर सकता है। तथापि, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की समाप्ति पर, उक्त अवधि की समाप्ति से पूर्व की गई या किए जाने से लोप की गई बातों के सिवाय, उस विधि का प्रभाव समाप्त हो जाएगा।..... संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा एक वर्ष की अवधि को हटा दिया गया है

और ऐसी विधि तब तक प्रवृत्त बनी रहेगी जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् भी सक्षम विधान-मंडल या अन्य प्राधिकारी द्वारा उसमें परिवर्तन या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता।

55. संविधान के अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 में किए गए कार्यों को छोड़कर (छह महीने की सीमित अवधि के लिए) इसी तरह के प्रावधान पाए गए हैं, इसके बावजूद कि संविधान के अनुच्छेद 249 के तहत पारित कोई प्रस्ताव लागू नहीं रहा है (संविधान के अनुच्छेद 249 के मामले में) या संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत जारी कोई उद्घोषणा (संविधान के अनुच्छेद 250 के मामले में) लागू नहीं रही है।

56. हालांकि संविधान का अनुच्छेद 359 (1-ए) मूल रूप से बनाए गए संविधान का हिस्सा नहीं था, इसमें भी कानून के प्रभावी होने से पहले की गई या किए जाने से छूट जाने वाली चीजों को बचाने का प्रावधान है। भाई चंद्रचूड़ ने संविधान के इन और इसी तरह के अन्य प्रावधानों से पर्याप्त रूप से निपटा है और इस संबंध में व्यक्त विचारों को दोहराना आवश्यक नहीं है।

57. अतः यह स्पष्ट है कि बचत खंड के अभाव में संविधान का अनुच्छेद 213 किसी अध्यादेश की करेंसी के दौरान लंबित या समाप्त कार्यों या संव्यवहारों को स्थायी रूप से नहीं जोड़ता है। यही कारण है कि भूपेंद्र कुमार बोस में यह कहा गया था कि संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) को ध्यान में रखते हुए किसी अध्यादेश में ऐसी बचत धारा नहीं हो सकती है जो अध्यादेश के जारी रहने के दौरान की गई कार्रवाई की अवधि को बढ़ाती हो।

58. इसलिए, एक अस्थायी अधिनियम के बीच एक मान्यता प्राप्त अंतर है जो अस्थायी अधिनियम के तहत किए गए कार्यों को स्थायित्व प्रदान कर सकता है और एक अध्यादेश जो संवैधानिक रूप से ऐसा प्रावधान नहीं कर सकता है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि अस्थाई अधिनियम विधायिका जबकि अध्यादेश कार्यपालिका द्वारा की गई विधायी कार्रवाई है। यदि इस अंतर की सराहना नहीं की जाती है, तो एक अस्थायी अधिनियम और एक अध्यादेश के बीच का अंतर धुंधला हो जाएगा। मुझे ऐसा लगता है कि इस न्यायालय ने भूपेंद्र कुमार बोस के मामले में इस विभेद को नजरअंदाज कर दिया।

59. यह मानते हुए कि अस्थायी अधिनियम और अध्यादेश के बीच कोई वास्तविक अंतर नहीं है, मैं एस. कृष्णन में अपनाए गए इस विचार से सम्मानपूर्वक सहमत होऊंगा कि किसी

अध्यादेश के तहत उसकी शेल्फ लाइफ समाप्त होने के बाद उसे जारी रखने के लिए एक बचत खंड आवश्यक है। हालांकि, जैसा कि भूपेंद्र कुमार बोस (और इस टिप्पणी से मेरे असहमत होने का कोई कारण नहीं है) में कहा गया है कि कोई अध्यादेश ऐसे बचत खंड का प्रावधान नहीं कर सकता है जो संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अध्यादेश के जीवन काल से परे कार्य करेगा। इसलिए, इस तरह की धारणा का वास्तव में कोई प्रभाव नहीं होगा।दूसरे शब्दों में, जिस भी तरीके से मुद्दे पर विचार किया जाता है, संविधान से यह स्पष्ट है कि किसी अध्यादेश के तहत कार्रवाई और लेनदेन को समाप्त कर दिया गया है, वह अध्यादेश के जीवन काल से आगे नहीं बढ़ सकता है।

60. तथापि, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि अध्यादेश के निबंधनों के अनुसार विधि अधिनियमित करने और इस प्रकार उसे स्थायित्व प्रदान करने में राज्य विधानमंडल पर स्पष्ट रूप से कोई संवैधानिक अवरोध नहीं है।

<u>वेंकट रेड्डी में भूपेंद्र कुमार बोस का विस्तार करने का निर्णय</u>

61. वेंकट रेड्डी मामले में यह न्यायालय भूपेन्द्र कुमार बोस से एक कदम आगे गया और उसने भूपेन्द्र कुमार बोस में अधिकथित अधिकार या दायित्व के स्थायी स्वरूप के विपरीत पूर्ण संव्यवहार की अपरिवर्तनीयता की अवधारणा पेश की। वेंकट रेड्डी के मामले में लिया गया निर्णय आंध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा जारी अंशकालिक ग्राम अधिकारी अध्यादेश, 1984 (1984 का अध्यादेश 1) की वैधता से संबंधित है।अध्यादेश के शीर्षक से पता चलता है कि इसने आंध्र प्रदेश राज्य में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों को समाप्त कर दिया और ग्राम सहायकों की नियुक्ति के लिए प्रावधान किया गया। अध्यादेश की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं में से एक दलील यह थीः "विधायिका द्वारा कोई अधिनियम पारित न किए जाने के कारण अध्यादेश की अवधि समाप्त हो जाने के कारण जिन पदों को समाप्त कर दिया गया था, उनके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वे पुनर्जीवित हो गए हैं और उत्तरोत्तर जारी किए गए अध्यादेशों का कोई उद्देश्य पूरा नहीं हुआ है।"

62. इस तर्क को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने कहा कि यदि संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) की अपेक्षाएं पूरी नहीं की जाती हैं, तो एक अध्यादेश 'लागू नहीं होगा' जिसका केवल यह अर्थ है कि इसे अनुच्छेद 213 के खंड (2) में उल्लिखित घटनाओं के होने पर प्रभावी माना जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, चूंकि किसी अध्यादेश का बल और प्रभाव

राज्यपाल द्वारा अनुमोदित राज्य विधानमंडल के अधिनियम के समान होगा, अतः यह इसके प्रख्यापन की तारीख से इसके प्रवर्तन में न रहने की तारीख तक एक विधि के रूप में लागू रहेगा।यह अनुच्छेद 213 (2) के पठन से बिल्कुल स्पष्ट है। संविधान जो यह पूरी तरह स्पष्ट करता है कि किसी अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो राज्य विधानमंडल के एक अधिनियम का होता है जिसे राज्यपाल की अनुमति प्राप्त होती है। नतीजतन, केवल इस वजह से कि कोई अध्यादेश समय के प्रवाह से काम करना बंद कर देता है या संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) के तहत अस्वीकृत हो जाता है, इसके तहत की गई कार्रवाइयों और लेन-देन को शून्य या समाप्त नहीं करता है। वे तब तक वैध हैं जब तक यह अध्यादेश बना रहेगा और इसे तब तक प्रभावी माना जाएगा जब तक यह लागू नहीं हो जाता।

63. तथापि, श्री वेंकट रेड्डी ने भूपेन्द्र कुमार बोस के 'स्थायी प्रकृति' सिद्धांत को विस्तारित करके और 'अपरिवर्तनीय प्रभाव' सिद्धांत को प्रस्तुत करके अध्यादेश के 'बल और प्रभाव' के लिए एक पूर्णतया नया आयाम प्रस्तुत किया। इसे निम्नलिखित शब्दों में प्रतिपादित किया गयाः

> "यहां तक कि यदि यह माना जाता है कि अनुच्छेद 213 के खंड (2) के कारण अध्यादेश बाद की तारीख से लागू नहीं है, तो भी अध्यादेश की धारा 3 का प्रभाव स्पष्ट विधान के अलावा अपरिवर्तनीय था।"

इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि आंध्र प्रदेश राज्य में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों का उन्मूलन एक पूर्ण घटना थी और इसलिए इसे वापस नहीं लिया जा सकता था। नतीजतन, इन पदों के पुनरुद्धार या याचिकाकर्ताओं के इन पदों पर बने रहने का कोई सवाल ही नहीं था.फिर भी इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य विधानमंडल संवैधानिक सीमाओं के अधीन पूर्वव्यापी प्रभाव से प्रवर्तित एक अभिव्यक्त विधि पारित करके यथास्थिति बहाल करने के लिए शक्तिहीन नहीं है।

64. मुझे डर है कि इस विचार को स्वीकार करना कठिन है।संविधान के अनुच्छेद 213 (2) को ध्यान में रखते हुए कोई अध्यादेश अपनी शर्तों पर स्थायी या अपरिवर्तनीय प्रकृति के किसी अधिकार या दायित्व का सृजन नहीं कर सकता अन्यथा एक असाधारण शक्ति कार्यपालिका और राज्य के राज्यपाल के हाथों में सौंप दी जाएगी जो निश्चित रूप से हमारे संविधान द्वारा आशयित नहीं है।यदि इस तरह की शक्ति कार्यपालिका और राज्य के

राज्यपाल को प्रदान करने का इरादा था, तो यह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 90 को पिछले दरवाजे से हमारे संविधान में शामिल करना होगा।

65. मुझे लगता है कि अगर स्थिति irreversible है, तो irreversible है।यदि भूतलक्षी कानून बनाकर स्थिति को पलटा जा सकता है तो निश्चित रूप से किसी अध्यादेश के व्यपगत होने या विधानसभा द्वारा अस्वीकृति के बाद यथास्थिति बहाल की जा सकती है। यही बात स्थायी प्रकृति के किसी कार्य या लेन-देन के बारे में भी कही जा सकती है। निःसंदेह, कुछ ऐसे भौतिक तथ्य हैं जो स्थायी प्रकृति के हैं या अपरिवर्तनीय हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई अध्यादेश किसी विशिष्ट अपराध के लिए मृत्युदंड अधिरोपित करने का उपबंध करता है और किसी व्यक्ति पर अध्यादेश की करेंसी के दौरान विचारण किया जाता है और उसे सिद्धदोष ठहराया जाता है और निष्पादित किया जाता है, तो जाहिर है कि एक अपरिवर्तनीय स्थिति पैदा हो जाती है और यदि अध्यादेश समय के अपशिष्ट द्वारा व्यपगत हो जाता है या शून्य हो जाता है, तो पूर्ववर्ती यथास्थिति बहाल नहीं की जा सकती। इसी तरह एक अध्यादेश द्वारा किसी प्राचीन या विरासत स्मारक को ध्वस्त करने के मामले में भी ऐसा ही किया जा सकता है। इस तरह के भौतिक रूप से अपरिवर्तनीय कार्य बहुत कम हैं और कानूनी रूप से अपरिवर्तनीय कार्यों से स्पष्ट रूप से अलग हैं।

66. ऐसे कार्यों के बीच अंतर है जो 'अपरिवर्तनीय' हैं और ऐसे कार्यों के बीच अंतर है जो प्रतिवर्ती हैं लेकिन लागू करने के लिए बोझ हैं। भूपेंद्र कुमार बोस और वेंकट रेड्डी में जो स्थितियां पैदा हुईं, वे शारीरिक रूप से अपरिवर्तनीय नहीं थीं, हालांकि उन्हें पलटना भारी पड़ सकता था। यदि चुनाव रद्द कर दिए जाएं या पदों को समाप्त कर दिया जाए, तो निश्चित रूप से नए चुनाव कराए जा सकते हैं और पदों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। इस संदर्भ में, यह याद रखना आवश्यक है, जैसा कि नबाम रेबिया बनाम डिप्टी वाले मामले में है। अध्यक्ष, अरुणाचल प्रदेश विधान सभा यह न्यायालय पूर्व की यथास्थिति को हमेशा बहाल कर सकता है।भूपेंद्र कुमार बोस और वेंकट रेड्डी ने ऐसा नहीं किया। किसी भी अजेय स्थिति का सामना करना पड़ता है।

67. इसलिए, मैं किसी अध्यादेश या यहां तक कि जनहित या संवैधानिक आवश्यकता के सिद्धांत में 'स्थायी प्रकृति' या 'अपरिवर्तनीय प्रभाव' के सिद्धांत को शामिल करने की स्थिति में नहीं हूं। किसी भी स्थिति में, राज्य विधानमंडल अपने घटकों के हितों को ध्यान में रखते

हुए एक उपयुक्त कानून पारित करने के लिए सक्षम है। इस हद तक, भूपेंद्र कुमार बोस और वेंकट रेड्डी दोनों को खारिज कर दिया जाता है।

अध्यादेशों की वैधता

68. सभी अध्यादेशों का प्रचालन समाप्त हो गया है और उनके अधीन किया गया कोई भी कार्य अब उनके प्रचालन समाप्त हो जाने के पश्चात् अस्तित्व में नहीं है। पहले तीन अध्यादेशों की वैधता को कर्मचारियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई। हमारे समक्ष यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि पहले अध्यादेश का प्रख्यापन किया गया है, किसी न किसी रूप में कोई सामग्री नहीं है। दूसरे और तीसरे अध्यादेशों द्वारा इसका पुनः प्रख्यापन अविधिमान्य है। इसलिए, कोई भी केवल यह मान सकता है कि पहले तीन अध्यादेश वैध हैं और कर्मचारी इन अध्यादेशों के बंद होने की तारीख तक उनके तहत लाभ के हकदार हैं, क्योंकि इन अध्यादेशों को राज्य विधानमंडल के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया था। मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि डी. सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य द्वारा किसी अध्यादेश के हर बार फिर से प्रख्यापन को प्रतिबंधित नहीं किया जाता है। किसी अध्यादेश के पुनः प्रख्यापन के विरुद्ध कोई सार्वभौमिक या व्यापक प्रतिषेध नहीं है, किंतु यह यांत्रिक पुनः प्रख्यापन नहीं होना चाहिए और यह बहुत दुर्लभ घटना होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, संविधान द्वारा किसी राज्य के राज्यपाल पर कोई अध्यादेश प्रख्यापित करने या पुनः प्रख्यापित करने की जिम्मेदारी तभी दी जाती है जब वह परिस्थितियों के अस्तित्व से संतुष्ट हो जाता है और तत्काल कार्रवाई आवश्यक हो जाती है। ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, हालांकि बहुत कम, जब पुनः घोषणा आवश्यक हो, लेकिन जहां तक पहले तीन अध्यादेशों का संबंध है, मेरे लिए इस मुद्दे पर गहराई से विचार करना आवश्यक नहीं है।

69. केवल चौथे और बाद के अध्यादेशों को कर्मचारियों द्वारा चुनौती दी गई थी। जहां तक चौथे और बाद के अध्यादेशों का संबंध है, एक विशिष्ट चुनौती के बावजूद बिहार राज्य द्वारा उनके प्रख्यापन और पुनः प्रख्यापन को पर्याप्त रूप से उचित नहीं ठहराया गया था। चौथे अध्यादेश के प्रख्यापन और बाद के अध्यादेशों द्वारा इसे पुनः प्रख्यापित करने के लिए तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं थी। मैं इस बात से सहमत हूं कि चौथे अध्यादेश और उसके बाद के अध्यादेशों को रद्द कर दिया जाना चाहिए।

राहत

70. पहले तीन अध्यादेशों को किसी भी चुनौती के अभाव में और चूंकि मैंने माना है कि ये तीन अध्यादेश वैध हैं, इसलिए इन अध्यादेशों द्वारा कर्मचारियों को दिया गया लाभ (जैसे वेतन और भत्ते) उचित है, जब तक वे काम करना बंद नहीं कर देते।तथापि, ये तीनों अध्यादेश कर्मचारियों को कोई स्थायी या अपरिवर्तनीय अधिकार या लाभ प्रदान नहीं कर सके और इन तीन अध्यादेशों के अधीन कर्मचारियों को कोई स्थायी या अपरिवर्तनीय अधिकार या लाभ प्राप्त नहीं हुए। उनके द्वारा प्राप्त किए गए किसी भी अधिकार या लाभ को समाप्त कर दिया गया जब अध्यादेशों का संचालन समाप्त हो गया।

71. चौथे और पश्चात्वर्ती अध्यादेशों को दी गई विशिष्ट चुनौती के बावजूद, बिहार राज्य ने उनके प्रख्यापन को न्यायोचित नहीं ठहराया है।इसलिए उन्हें प्रताड़ित किया जा रहा है।

72. वेतन (यदि पहले से भुगतान नहीं किया गया है) और उस पर ब्याज के भुगतान के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों में छेड़छाड़ करने की आवश्यकता नहीं है।संदर्भ का जवाब तदनुसार दिया जाता है।

(मदन बी. लोकुर), न्यायमूर्ति

नई दिल्ली,

02 जनवरी, 2017

सूचित करने योग्य

भारत के उच्चतम न्यायालय में

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल अपील संख्या 5875/1994

कृष्ण कुमार सिंह और अन्य याचिकाकर्ता

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य उत्तरदाता

के साथ

सिविल अपील संख्या 5876-5890/1994

रिट याचिका (सी) संख्या 580/1995

सिविल अपील नं. 3533-3595/1995

आदेश

टी. एस. ठाकुर, भारत के मुख्य न्यायाधिश

1. मुझे अपने सम्मानित भाई न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ द्वारा प्रस्तावित आदेश और उसी पर न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर द्वारा दिए गए विसंगत नोट को पढ़ने का लाभ मिला है। एक वृहत्तर न्यायपीठ के लिए इस निर्देश को जन्म देने वाले विवाद की उत्पत्ति को विस्तृत रूप से प्रस्तावित आदेश में उपवर्णित किया गया है। चंद्रचूड़ की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया गया है, जिसमें मैं कोई उपयोगी बात शामिल नहीं कर सकता, विशेष रूप से जब कहानी स्पष्ट और तथ्यात्मक रूप से सटीक हो। मुझे केवल इतना कहने की आवश्यकता है कि हमारे विचार के लिए जो मौलिक प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या बिहार गैर-सरकारी संस्कृत विद्यालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अध्यादेश, 1989 की

सातवीं अनुवर्ती भर्त्सना किसी अवैधता या संवैधानिक अनौचित्य से ग्रस्त है। पटना उच्च न्यायालय ने कथित अध्यादेशों के आधार पर राहत की मांग करने वाले अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज करते हुए कहा कि अध्यादेशों की बार-बार पुनरावृत्ति असंवैधानिक थी। इसके संविधान पीठ के निर्णय पर निर्भर करते हुए डी. सी. वाधवा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 488.बिहार राज्य और अन्य (1987) 1 एससीसी 378, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया है, लेकिन अपीलकर्ताओं को पहले से ही भुगतान किए गए वेतन की किसी भी वसूली के खिलाफ सुरक्षा प्रदान की है।

2. उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण पर आक्षेप करने के लिए फाइल की गई वर्तमान अपील की शुरूआती सुनवाई इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों वाली न्यायधीश सुजाता वी. मनोहर और न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा की न्यायपीठ द्वारा की गई थी। तीन न्यायाधीशों ने इसे पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया।तथापि, चूंकि इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त दो पूर्ववर्ती संविधान न्यायपीठ के विनिश्चयों की सत्यता के बारे में संदेह व्यक्त किया गया था। उड़ीसा राज्य बनाम भूपेन्द्र कुमार बोस (1962) अनुपूरक 2 एससीआर 380 और टी. वेंकट रेड्डी बनाम आंध्र राज्य (1985) 3 एस. सी. सी. 198, मामले को एक प्राधिकृत घोषणा के लिए सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया था।

3. न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ द्वारा प्रस्तावित आदेश में, उनकी प्रभुता ने बहुत विस्तार से कई पहलुओं पर विचार किया है जो हमारे न्यायनिर्णयन के लिए सीधे या प्रासंगिक रूप से उत्पन्न होते हैं और अन्य बातों के साथ-साथ यह निष्कर्ष निकाला है कि 1989 में जारी किए गए पहले अध्यादेश की सात क्रमिक प्रतिलिपियां संविधान के साथ एक बिना शीर्षक वाली धोखाधड़ी थी, विशेष रूप से जब संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत अपेक्षित किसी भी अध्यादेश को बिहार विधान सभा के समक्ष कभी पेश नहीं किया गया था। मैं अपने सम्मानित भाई डॉ. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त किए गए इस विचार से पूरी तरह सहमत हूं कि अध्यादेशों को बार-बार दोहराना संविधान के साथ छल है, विशेष रूप से तब जब भारत सरकार ने ऐसा प्रतीत होता है कि समय ने विधायिका के समक्ष अध्यादेशों को रखने से लगातार बचा लिया है।डी. सी. वाधवा के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में (उपर्युक्त), इस तरह की बार-बार की गई भर्त्सना कानूनी रूप से अस्वीकार्य थी जिसे उच्च

न्यायालय द्वारा सही घोषित किया गया है। यहां तक कि न्यायमूर्ति लोकुर ने हिज लार्डशिप द्वारा प्रस्तावित आदेश में पहले तीन अध्यादेशों को छोड़कर, जो असंवैधानिक पाए गए हैं, क्योंकि हिज लार्डशिप के अनुसार, वे असंवैधानिकता के दुष्प्रभाव से अप्रभावित नहीं थे, बल्कि याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी। मेरी राय में इस तरह की चुनौती की जरूरत नहीं थी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि पहले, दूसरे और तीसरे अध्यादेशों को सरकार द्वारा जारी किए गए अध्यादेशों द्वारा निरस्त कर दिया गया था।किसी भी तरह से, क्योंकि अध्यादेश जारी करने और उन्हें फिर से लागू करने की प्रक्रिया एक ही लेन-देन की प्रकृति की थी और एक ही विषय पर एकल श्रृंखला का एक हिस्सा था-शक्ति के इस तरह के किसी भी प्रयोग से जुड़ी अमान्यता का दोष पहले, दूसरे और तीसरे अध्यादेशों को नहीं छोड़ेगा, जो बाद के अध्यादेशों को पसंद करेंगे। एक ही सिद्धांत पर असंवैधानिक होना। इन अध्यादेशों ने बाद में होने वाली भर्त्सना की नींव रखी। यदि इमारत प्रभावित होती है, तो कोई भी रास्ता नहीं है कि नींव असंवैधानिकता की बुराई से अप्रभावित रह सके। मैं न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि 1989 के अध्यादेश 32 से शुरू होकर 1992 के अध्यादेश 2 तक के सभी अध्यादेश संवैधानिक प्रश्नगत अवैध थे, यह तथ्य कि उनमें से किसी को भी राज्य विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया था, जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 213 (2) के तहत आवश्यक था, उस निष्कर्ष का समर्थन करता है।

4. तो अगला प्रश्न यह है कि क्या सरकार द्वारा अनुच्छेद 213 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किए गए अध्यादेश या उस मामले के लिए 123 इसके द्वारा प्रभावित व्यक्तियों के पक्ष में स्थायी अधिकार पैदा कर सकते हैं।मैं न्यायमूर्ति लोकुर और न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ के विचारों से सहमत हूं कि अध्यादेश जारी करने के लिए प्रयुक्त शक्ति की प्रकृति ऐसे अध्यादेशों से प्रभावित लोगों के पक्ष में स्थायी अधिकारों के सृजन को स्वीकार नहीं करती है। मैं भी इससे सहमत हूं यह मत कि भूपेन्द्र कुमार बोस और टी. वेंकट रेड्डी (पूर्वोक्त) के मामले में संविधान पीठ के निर्णय का उसी हद तक विस्तार किया गया है जिस हद तक अध्यादेशों द्वारा विधान के लिए स्थायी अधिकारों के सृजन के सिद्धांत का सही निर्णय नहीं किया गया है और उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। इसका मतलब है कि इस मामले में जारी किए गए अध्यादेश संस्कृत स्कूल के शिक्षकों के पक्ष में कोई स्थायी अधिकार पैदा नहीं कर सकते थे, विशेष रूप से जब अध्यादेश अपने आप में संविधान के साथ

धोखाधड़ी थे।उच्च न्यायालय और मेरे सम्मानित भाइयों मदन बी. लोकुर और चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त विचार मेरी राय में कानूनी रूप से गैर-अपवाद हैं।

5. यह मुझे इस सवाल की ओर लाता है कि क्या अध्यादेशों के दायरे में आने वाले संस्कृत स्कूल के शिक्षकों द्वारा लिए गए वेतन के लाभ को उलट दिया जा सकता है और उन्हें इस प्रकार प्राप्त राशि को राज्य सरकार द्वारा वसूला जा सकता है।न्यायमूर्ति लोकुर ने यह विचार व्यक्त किया है कि चूंकि पहले तीन अध्यादेश वैध हैं, इसलिए उक्त अध्यादेश की चलन के दौरान उन्हें प्राप्त कुछ भी बरामद नहीं किया जा सकता है।चंद्रचूड़ ने निष्कर्ष में यह भी निर्देश दिया है कि वेतन की कोई वसूली नहीं की गई है। भुगतान किसी भी कर्मचारी से किया जाएगा.मैं इस निर्देश से सहमत हूं, क्योंकि मेरी राय में जिन शिक्षकों को अध्यादेशों के तहत वेतन का भुगतान किया गया था और जिन्होंने अनुमान के आधार पर अपने जीवन और कार्यों को व्यवस्थित किया था और इस विश्वास के साथ कि उन्हें भुगतान की गई राशि वैध रूप से देय थी और देय थी, उनसे इस समय उन्हें वितरित की गई राशि को चुकाने के लिए नहीं कहा जा सकता है। पहले से किया गया भुगतान तदनुसार उन लोगों से वसूली योग्य नहीं होगा जिन्हें यह प्राप्त हो चुका है।

6. न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ द्वारा प्रस्तावित आदेश में कई अन्य पहलुओं पर भी विचार किया गया है, जिसमें यह सवाल भी शामिल है कि क्या अनुच्छेद 213 और 123 के संदर्भ में विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने की बाध्यता अनिवार्य है और क्या संसद और राज्य विधायिका, जैसा भी मामला हो, के समक्ष अध्यादेश न लाना अपने आप में संविधान के साथ छल होगा। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने कहा कि अध्यादेश लाना एक अपरिहार्य संवैधानिक दायित्व है और इसका उल्लंघन अध्यादेशों की प्रभावकारिता को प्रभावित करता है, जबकि न्यायमूर्ति लोकुर ने अलग दृष्टिकोण अपनाया है। मेरे विचार में, सवाल यह है कि क्या अध्यादेश को विधायिका के समक्ष रखना अनिवार्य है या नहीं, इस पर अधिकृत रूप से निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह अपील और रिट याचिकाएं, जिनसे यह उत्पन्न होती हैं, उस प्रश्न का समाधान किए बिना निपटाई जा सकती हैं। इस बात के बावजूद कि चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति या लोकुर द्वारा घोषित निर्देशिका के अनुसार अध्यादेश को रखने की आवश्यकता अनिवार्य है, अध्यादेशों को बार-बार दोहराना डी. सी. वाधवा के मामले में इस न्यायालय की घोषणा के आलोक में संवैधानिक रूप से अननुज्ञेय और कार्यपालिका में निहित शक्तियों के साथ धोखाधड़ी है। यदि ऐसा है, जैसा कि प्रतीत होता है, तो क्या अध्यादेशों के रखे जाने से

यह असंवैधानिक हो जाएगा, इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जिनमें विधायिका के समक्ष अध्यादेशों को रखे बिना पुनः प्रबोधन आवश्यक हो सकता है। समान रूप से यह तर्क भी तर्कसंगत है कि संविधान में विधायिका के पुनः समवेत होने की तारीख से छह सप्ताह के लिए अध्यादेशों की समाप्ति का प्रावधान है, भले ही अध्यादेश सदन के समक्ष रखा गया हो या नहीं। तीन परिदृश्य जो लोकुर, जे. उसके आदेश में संदर्भित वास्तविक जीवन की संभावनाएं हैं और उन्हें किसी विसंगति को जन्म दिए बिना संबोधित किया जाना चाहिए।इसके लिए गहन विचार-विमर्श की आवश्यकता हो सकती है जो किसी उपयुक्त मामले में किया जा सकता है। राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेशों को प्रस्तुत न करना, किसी भी स्थिति में, यह दिखाने के लिए केवल एक परिस्थिति थी कि कार्यपालिका ने विधायिका के समक्ष अध्यादेशों को प्रस्तुत करने की सहवर्ती बाध्यता का पालन किए बिना इसमें निहित शक्ति का उपयोग किया था, भले ही उसे ऐसा करने का अवसर मिला हो। इसलिए उच्च न्यायालय का यह निर्णय सही था कि इस आधार पर रिट याचिकाकर्ताओं को कोई राहत नहीं दी जा सकती। इस दृष्टि से मैं अनुच्छेद 123 (2) और 213 (2) के निर्वचन का प्रश्न छोड़ना चाहूंगा, जहां तक संसद/विधायिका के समक्ष अध्यादेश प्रस्तुत करने की सरकार की बाध्यता का संबंध है।इन कुछ पंक्तियों के साथ संदर्भ का जवाब भाई चंद्रचूड़, न्या0 की कुछ पंक्तियाँ उसका उत्तर देने में समर्थ हैं ।

(टी. एस. ठाकुर), भारत के मुख्य न्यायाधीश

नई दिल्ली

02 जनवरी, 2017

भारत के उच्चतम न्यायालय में

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल अपील संख्या 1994 की 5875

कृष्ण कुमार सिंह और अन्य अपीलकर्ता

बनाम्

बिहार राज्य एवं अन्य उत्तरदाता

के साथ

सिविल अपील संख्या 5876-5890/1994

के साथ

(ग) सं. 580/1995

के साथ

सिविल अपील सं. 3533-3595/1995

निर्णय

डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़, न्या0

क. अध्यादेशों का पुनः प्रख्यापनः संदर्भ के लिए पृष्ठभूमि

अर्थशास्त्र के एक प्रोफेसर, जो बिहार में भूमि अवधि पर अपना शोध कर रहे थे, को एक चौंकाने वाली प्रक्रिया का पता चला। अध्यादेश जारी किए गए थे और बिहार के राज्यपाल द्वारा 1967 और 1981 के बीच उनमें से 256 को फिर से घोषित किया गया। इन अध्यादेशों को 14 वर्षों तक लंबे समय तक जीवित रखा गया।अध्यादेशों को फिर से जारी करने के बारे में यह अकादमिक अनुसंधान एक पुस्तक और संविधान के अनुच्छेद 32

के तहत एक याचिका का विषय बन गया। इस पुस्तक में डी. सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय की पृष्ठभूमि प्रदान की गई है। 13 संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि बिहार राज्य में जो प्रथा अपनाई गई थी वह संवैधानिक सीमाओं की अवहेलना में थी।असाधारण परिस्थितियों में अध्यादेश बनाने के लिए राज्यपाल को दी गई असाधारण शक्ति ने अपने प्रयोग के तरीके से राज्य में विधायिका के प्राथमिक कानून बनाने के कार्य को अपने हाथ में ले लिया था। संविधान पीठ ने अध्यादेशों द्वारा इस नियम की निंदा कीः अध्यादेश-राज।

2. संविधान पीठ का निर्णय 20 दिसंबर, 1986 को दिया गया था।इस निर्णय के लगभग तीन वर्ष बाद बिहार के राज्यपाल ने पहला अध्यादेश जारी किया, जो इस मामले में जारी किया गया है, जिसमें राज्य में चार सौ उनतीस संस्कृत विद्यालयों के अधिग्रहण का प्रावधान है। स्कूल के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की सेवाओं को कुछ शर्तों के अधीन राज्य सरकार को स्थानांतरित किया जाना था (जो बाद में इस फैसले में विस्तार से बताया जाएगा)। पहले अध्यादेश के बाद अध्यादेशों का उत्तराधिकार हुआ।इनमें से कोई भी अध्यादेश, जो संविधान के अनुच्छेद 213 के तहत राज्यपाल की शक्ति का उपयोग करते हुए जारी किया गया था, राज्य विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया था। राज्य विधायिका के आदेश के अनुसार।राज्य विधानमंडल ने अध्यादेशों के संदर्भ में कानून नहीं बनाया। उनमें से अंतिम को व्यपगत होने दिया गया।

3. वेतन के भुगतान के लिए संस्कृत स्कूलों के कर्मचारियों द्वारा पटना उच्च न्यायालय के समक्ष रिट कार्यवाही शुरू की गई। उन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आया। जब उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ अपील कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष आई, तो दोनों न्यायाधीशों-न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर और न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा ने यह अभिनिर्धारित किया कि दूसरे से शुरू होने वाले सभी अध्यादेश अवैध थे क्योंकि उनका प्रख्यापन संविधान पीठ के निर्णय में स्थापित संवैधानिक स्थिति के विपरीत था। न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि पहला अध्यादेश भी अध्यादेशों की श्रृंखला का हिस्सा होने के नाते अवैध था। हालांकि, न्यायमूर्ति वाधवा ने कहा कि पहला अध्यादेश वैध है और इसका प्रभाव तब तक बना रहेगा जब तक कि विशिष्ट कानून द्वारा इसे पलट नहीं दिया जाता। दोनों न्यायाधीशों के

बीच मतभेद पहले अध्यादेश की संवैधानिक वैधता के उनके मूल्यांकन में था, उनमें से एक ने इसे अवैध माना जबकि दूसरे ने इसे संवैधानिक माना।

4. जब यह मामला तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष आया तो इसे पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ को इस आधार पर निर्दिष्ट किया गया कि इसने संविधान से संबंधित सारगर्भित प्रश्न उठाए हैं।23 नवम्बर, 2004 को संविधान पीठ के समक्ष कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप सात न्यायाधीशों की एक बड़ी न्यायपीठ को निर्देश किया गया। संदर्भ के आधार को संदर्भ के क्रम से सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है जो इस प्रकार हैः

> "सुनवाई के दौरान श्री पी. पी. राव, रखे गए अपीलार्थियों के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता राज्य में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा उड़ीसा बनाम भूपेंद्र कुमार बोस, 1962 (सप्लीमेंट 2) एस. सी. आर. 380 और टी. वेंकट रेड्डी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1985 (3) एस. सी. सी. 198 विद्वान सॉलिसिटर जनरल के संज्ञान में लाया गया इस न्यायालय ने पंजाब राज्य बनाम सतपाल डांग एवं अन्य में निर्णय दिया। 1969 (1) एससीआर 478 इन सभी को निर्णय संविधान पीठ के निर्णय हैं। श्री राकेश द्विवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता तथापि, प्रत्यर्थी-बिहार राज्य एस आर बोम्मई में इस न्यायालय के 9 न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय बोम्मई एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य ओआरएस, 1994 (3) एससीसी 1 और विशेष रूप से पैरा 283 से 290 में उसके द्वारा।
>
> हमारी राय है कि इन मामलों में इस न्यायालय की 7 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुनवाई की जाएगी। सूचीबद्ध होना।"

जैसा कि उपर्युक्त उद्धरण से संकेत मिलता है, संविधान पीठों के तीन निर्णय जिन पर ध्यान दिया गया है, वे हैं भूपेंद्र कुमार बोस, टी वेंकट रेड्डी और सतपाल डांग।दूसरी ओर, बोम्मई में नौ न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर राज्य के वकील द्वारा भरोसा किया गया। बोम्मई से आग्रह किया गया है कि वह पहले के निर्णयों पर पुनर्विचार करे।इससे संदर्भ को बढ़ावा मिला है।

ख. अध्यादेश

5. पहला अध्यादेश, जिसे बिहार गैर-सरकारी संस्कृत स्कूल (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अध्यादेश, 1989 कहा गया था-प्रख्यापित किया गया था। बिहार के राज्यपाल द्वारा 18 दिसंबर, 1989 को प्रस्थापित किया गया। अध्यादेश में राज्यपाल की संतुष्टि का उल्लेख है किः

> "44...परिस्थितियां मौजूद हैं जो इसे प्रस्तुत करती हैं के लिए तत्काल कार्रवाई करने के लिए आवश्यक है। गैर-सरकारी संस्कृत स्कूलों का अधिग्रहण राज्य सरकार द्वारा प्रबंधन और नियंत्रण सुधार, बेहतर संगठन और राज्य में संस्कृत शिक्षा का विकास बिहार। (आई डी 665 पर)"

अध्यादेश के खंड 3 में राज्य सरकार द्वारा चार सौ उनतीस संस्कृत स्कूलों (अनुसूची 1 में नामित) के प्रबंधन और नियंत्रण को लेने का प्रावधान है। खंड 3 इस प्रकार थाः

> "3. प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण राज्य द्वारा गैर-सरकारी संस्कृत विद्यालय सरकार-(1) लागू होने की तारीख से प्रभावी इस अध्यादेश का प्रवर्तन 429, संस्कृत अनुसूची-1 में उल्लिखित स्कूल निम्नलिखित में निहित होंगेः राज्य सरकार और राज्य सरकार उसके बाद प्रबंधन और नियंत्रण।
>
> (2) सभी संस्कृत की सभी परिसंपत्तियां और गुण (ख) उपधारा (1) में उल्लिखित स्कूल और शासी निकाय, प्रबंधन समितियां (क) वह चाहे चल हो या अचल, भूमि, भवन, दस्तावेज, पुस्तकें और रजिस्टर, नकद शेष, आरक्षित निधि, पूंजी निवेश, फर्नीचर और फिक्सचर तथा अन्य वस्तुएं पदभार ग्रहण करने की तारीख, हस्तांतरित होने की तारीख और निहित होने की तारीख सभी से मुक्त राज्य सरकार नाकाबंदी।"

खंड 4 में स्कूलों में नियुक्त किए गए शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों को राज्य सरकार को स्थानांतरित करने का प्रावधान किया गया है। अध्यादेश से पहले राज्य सरकार द्वारा निर्धारित निर्धारित मानक और स्टाफ पैटर्न के अनुसार स्वीकृत पदों के लिए स्थायी या अस्थायी रूप से।स्वीकृत संख्या से अधिक और आवश्यक योग्यता या फिटनेस न रखने वाले कर्मचारियों को स्वतः ही बर्खास्त कर दिया जाता था।खंड 4 निम्नलिखित शब्दों में थाः

> "प्रबंधन को अपने हाथ में लेने का प्रभाव और नियंत्रण-(1) निहित करने की तारीख से प्रभावी अनुसूची-1 में उल्लिखित संस्कृत विद्यालय राज्य सरकार में धारा 3 (1), सेवाएं उन सभी शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों की अनुसूची-1 में उल्लिखित स्कूलों में से, स्थायी/अस्थायी रूप से नियुक्ति निर्धारित के अनुसार स्वीकृत पद मानक, स्टाफिंग पैटर्न, जैसा कि विहित किया गया है। इस अध्यादेश से पहले राज्य सरकार राज्य सरकार को हस्तांतरित कर दिया गया है। उन्होंने बताया, राज्य सरकार का कर्मचारी होगा, उनका कोई भी पद हो।
>
> बशर्ते कि उन शिक्षकों की सेवाएं या गैर-शिक्षण कर्मचारी जो स्वीकृत संख्या अथवा आवश्यक शक्ति न होना फिटनेस/योग्यता अपने आप खड़ी हो जाएगी समाप्त कर दिया।
>
> (2) संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों का पदभार ग्रहण किया गया। सरकार समान वेतन की हकदार होगी, वेतन भत्ते और पेंशन आदि जो निम्नलिखित के लिए स्वीकार्य हैं, के शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारी बिहार के माध्यमिक विद्यालयों को अपने कब्जे में ले लिया के समान होगा।"

खंड 5 के तहत, राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित स्कूलों का प्रबंधन और नियंत्रण सरकार के शिक्षा निदेशक, संस्कृत शिक्षा के प्रभारी के पास रहना था। अध्यादेश में अन्य बातों के अलावा प्रबंध समितियों के गठन (खंड 6), शक्तियों और प्रबंधन समितियों के कार्य (खंड 7), प्रधानाध्यापकों के कार्य (खंड 8), राज्य सरकार द्वारा लिए गए संस्कृत स्कूलों के खातों और लेखा परीक्षा (खंड 9), राज्य में संस्कृत शिक्षा के विकास से संबंधित एक संस्कृत शिक्षा समिति का गठन (खंड 10), अध्यादेश के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए अपराध और दंड (खंड 11), अपराधों का संज्ञान (खंड 12), अच्छे विश्वास से की गई कार्रवाई का संरक्षण (खंड 13), नियम बनाने की शक्ति (खंड 14) और कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति (खंड 15)। अध्यादेश की अनुसूची में राज्य के कई जिलों में स्थित चार सौ उनतीस संस्कृत स्कूलों को सूचीबद्ध किया गया है। प्रत्येक स्कूल के साथ मानक शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों की संख्या भी थी।

6. 1989 का अध्यादेश 32 16 दिसंबर 1989 को प्रख्यापित किया गया था और 18 दिसंबर 1989 को बिहार राजपत्र असाधारण में प्रकाशित किया गया था।पहले अध्यादेश 19 की अवधि दो महीने और दो सप्ताह की थी क्योंकि अनुच्छेद 213 (2) (क) के प्रावधानों के आधार पर यह विधायिका के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर लागू नहीं रह गया था। विधानसभा का सत्र 25 जनवरी, 1990 को समाप्त हुआ। 28 जनवरी, 1990 को अध्यादेशों के क्रम में दूसरा अध्यादेश जारी किया गया।विधानसभा का अगला सत्र 16 मार्च 1990 और 30 मार्च 1990 के बीच आयोजित किया गया था। 2 मई, 1990 को अध्यादेशों के क्रम में तीसरा अध्यादेश जारी किया गया। विधानसभा का अगला सत्र 22 जून, 1990 और 9 अगस्त, 1990 के बीच हुआ। जिसके परिणामस्वरूप अध्यादेश की आयु लगभग तीन महीने थी।पहले, दूसरे और तीसरे अध्यादेश भी इसी तरह के थे।

7. 13 अगस्त, 1990 को राज्यपाल ने एक नया अध्यादेश प्रख्यापित किया। 21 यह अध्यादेश खंड 3 और 4 में अंतर्विष्ट उपबंध, जो पहले तीन अध्यादेशों से वस्तुतः भिन्न थे। खंड 3 और 4 में निम्नलिखित रूप में उपबंध किया गया हैः-

> "3. प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण राज्य द्वारा गैर-सरकारी संस्कृत विद्यालय का सरकार- (1) लागू होन की तारीख से प्रभावी इस अध्यादेश का प्रवर्तन, 429 संस्कृत अनुसूची-1 में उल्लिखित स्कूल निम्नलिखित में निहित होंगेः राज्य सरकार और राज्य सरकार उसके बाद प्रबंधन और नियंत्रण।
>
> लेकिन अनुलग्नक 1 में उल्लिखित संस्कृत विद्यालय इस अध्यादेश के माध्यम से जांच की जाएगी। संबंधित कलेक्टर और यदि यह पाया जाएगा (ख) जिलाधीश की रिपोर्ट कि ऐसा स्कूल अस्तित्व में नहीं है तो , इस मामले में राज्य सरकार अनुलग्नक 1 से उस स्कूल का नाम हटाएं राज्य में अधिसूचना के माध्यम से अध्यादेश का संशोधन राजपत्र में यूचित होगा।
>
> (2) सभी संस्कृत की सभी परिसंपत्तियां और गुण उप-धारा (1) में उल्लिखित स्कूल और शासी निकाय, प्रबंध समितियां, इसके आनुषंगिक चाहे वह चल हो या अचल भूमि, भवन, दस्तावेज, पुस्तकें और

रजिस्टर, नकद-शेष, आरक्षित निधि, पूंजी (ख) निवेश, फर्नीचर और फिक्सचर तथा अन्य वस्तुएं, पदभार ग्रहण करने की तिथि को उनका स्थानांतरण हो जाएगा। सभी से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित नाकाबंदी।

4. प्रबंधन ग्रहण करने का प्रभाव और नियंत्रण में है– (1) अध्यादेश के अनुलग्नक 1 में उल्लिखित संस्कृत स्कूलों में काम करने वाले कर्मचारी अनुसूची के अनुसार राज्य सरकार में इसके प्रबंधन और नियंत्रण के एकीकरण से संबंधित हैं अनुसूचि 3(1) जब तक सरकार उनकी सेवाओं के बारे में कोई निर्णय नहीं लेती तब तक इस स्कूल के कर्मचारी नहीं होंगे।

(2) राज्य सरकार व्यक्तिगत रूप से कर्मचारियों की संख्या, नियुक्ति की प्रक्रिया के साथ-साथ कर्मचारियों के चरित्र के बारे में पूछताछ करने के लिए विशेषज्ञों और अनुभवी व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त करेगी और स्कूल के शासी निकाय द्वारा स्वीकृत पदों की वैधता, नियुक्ति प्रक्रिया और पदोन्नति के मामलों या सेवाओं की पुष्टि के बारे में निर्णय लेगी। समिति संस्थान की आवश्यकता पर विचार करेगी और योग्यता, अनुभव और अन्य संबंधित और प्रासंगिक विषयों के बारे में विचारों का जायजा लेने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी। समिति अपनी रिपोर्ट में यह भी तय करेगी कि एससी, एसटी और ओबीसी के लिए आरक्षण के संबंध में निर्देशों का पालन किया गया है या नहीं।

(3) राज्य सरकार रिपोर्ट मिलने के बाद कर्मचारियों की संख्या और नियुक्तियों की प्रक्रिया का निर्धारण करेगी और व्यक्तिगत आधार पर तथा उनकी योग्यता और अयोग्यता को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति के मामले में जाएगी। सरकार उनके लिए स्थान, वेतन, भत्ते और अन्य सेवा शर्तें भी निर्धारित करेगी।"

खंड 16 में निम्नलिखित शब्दों में निरसन और बचत का उपबंध किया गया हैः

> "16. निरसन और व्यावृत्ति(1) बिहार गैर-सरकारी संस्कृत विद्यालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अध्यादेश, 1990 (बिहार अध्यादेश 14,1990) इसके द्वारा निरस्त किया जाता है।
>
> (2) ऐसे निरसन के बावजूद, उक्त अध्यादेश द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए की गई कोई बात या की गई कोई कार्रवाई इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए की गई समझी जाएगी मानो यह अधिनियम उस तारीख को प्रवृत्त था जिसको ऐसी बात की गई थी या कार्यवाही की गई थी।"

चूंकि विधान सभा का अगला सत्र 22 नवम्बर, 1990 को प्रारंभ हुआ था, अतः अध्यादेश की आयु लगभग चार महीने और दो सप्ताह थी। अध्यादेशों की श्रृंखला में पांचवां अध्यादेश 8 मार्च, 1991 को जारी किया गया था। विधानसभा का सत्र 21 जून 1991 और 2 अगस्त 1991 के बीच हुआ। विधानसभा का अगला सत्र 1 दिसंबर, 1991 से 18 दिसंबर, 1991 तक चला। सातवां अध्यादेश 21 जनवरी 1992 को प्रस्थापित हआ। विधान सभा का सत्र 20 मार्च 1992 से 27 मार्च 1992 के बीच हुआ। यह अध्यादेश 30 अप्रैल, 1992 को समाप्त हो गया।

8. राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश एक सुसंगत पैटर्न का अनुसरण करते हैं।कोई भी अध्यादेश विधायिका के समक्ष नहीं रखा गया था। प्रत्येक अध्यादेश विधानसभा का सत्र बुलाने के छह सप्ताह बाद समय के अपशिष्ट से व्यपगत हो गया।जब पिछला अध्यादेश लागू नहीं हुआ तो विधानसभा का सत्र नहीं चलने पर एक नया अध्यादेश जारी किया गया ।विधान सभा के पास इस बात पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था कि किसी अध्यादेश को अनुमोदित किया जाना चाहिए या अस्वीकृत किया जाना चाहिए।अध्यादेश की तर्ज पर कानून बनाने के लिए सरकार ने विधानसभा में कोई कानून पेश नहीं किया। अपने पूर्ववर्तियों की तरह अंतिम अध्यादेश भी अनुच्छेद 213 (2) (ए) में निहित संवैधानिक सीमा के परिणामस्वरूप लागू नहीं होता है। यह विषय पूरी तरह से एक के बाद एक अध्यादेशों द्वारा शासित था, जो अध्यादेश की इस श्रृंखला में पहली बार लागू होने से महज तीन साल पहले इस न्यायालय द्वारा एक अध्यादेश राज के रूप में वर्णित किया गया था।

ग. उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही

9. उच्च न्यायालय ने विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दों को तैयार किया:

(i) क्या अध्यादेशों की समाप्ति पर संस्कृत विद्यालयों का अराष्ट्रीयकरण कर दिया गया था?

(ii) क्या चौथे अध्यादेश की धारा के खंड 4 के परिणामस्वरूप कर्मचारी सरकारी सेवक नहीं रह गए थे जो वे 18 दिसंबर 1989 को जारी किए गए पहले अध्यादेश 26 के संदर्भ में बन गए हैं?

(iii) क्या चौथा अध्यादेश संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिकार क्षेत्र से बाहर था?

(iv) क्या शिक्षकों की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए और उन्हें सरकारी कर्मचारी माना जाना चाहिए?

(v) क्या किसी भी स्थिति में याचिकाकर्ता अपने वेतन और परिलब्धियों के हकदार थे।

10. उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अध्यादेशों की समाप्ति के बावजूद बिहार राज्य में स्कूलों का स्थायी निहितार्थ नहीं है। उच्च न्यायालय की राय में अध्यादेश जारी करने की शक्ति एक नियम नहीं है बल्कि एक अपवाद है और यह राज्यपाल को आपात स्थितियों से निपटने के लिए प्रदान की गई है। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में डी सी वाधवा में संविधान पीठ के निर्णय के विपरीत एक के बाद एक अध्यादेशों का प्रख्यापन किया गया था। इसके अतिरिक्त, इनमें से कोई भी अध्यादेश निम्नलिखित के समक्ष नहीं रखा गया है: नतीजतन, विधायिका इस बात पर विचार करने के अपने अधिकार से वंचित हो गई कि अध्यादेशों को अनुमोदित किया जाना चाहिए या नहीं। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विधायिका के समक्ष अध्यादेश प्रस्तुत करने के संवैधानिक दायित्व का अनुपालन करने में विफलता के परिणाम होंगे: जिन अध्यादेशों को बार-बार जारी किया गया था, वे अधिकार-क्षेत्र से बाहर थे और याचिकाकर्ताओं को राज्य की सेवा में बने रहने का कोई कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं था। उच्च न्यायालय ने कहा कि चौथे अध्यादेश ने पहले के अध्यादेशों से हटकर काम किया है क्योंकि राज्य सरकार ने पाया है कि कई शिक्षक जो अपेक्षित मानदंडों को पूरा नहीं करते हैं, वे सरकारी कर्मचारी बन जाते हैं।उच्च न्यायालय की राय में यह राज्य के लिए स्वीकार्य था कि वह एक ऐसे प्रावधान को संशोधित करे जो पहले के अध्यादेश में बनाया गया था और केवल वे ही सरकारी कर्मचारी बन सकते थे जो चौथे

अध्यादेश में किए गए प्रावधानों की कठोरता को पारित करते थे। यह निष्कर्ष इस बुनियादी निष्कर्ष के अधीन था कि सभी अध्यादेश असंवैधानिक थे। वेतन के भुगतान के लिए निर्देश दिए जाने के पहलू पर उच्च न्यायालय ने कहा कि जांच में तीन सौ पांच स्कूल सही पाए गए, जबकि कम से कम एक स्कूल अपने अधिकार में लेने के मानदंड को पूरा नहीं कर पाया। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता अध्यादेश की वैधता की अंतिम तारीख 30 अप्रैल, 1992 तक सरकारी सेवक के रूप में वेतन पाने के हकदार थे, जिस अवधि के दौरान अध्यादेश अस्तित्व में रहे थे। उच्च न्यायालय ने अंततः निर्णय दिया कि उसके निष्कर्षों के संदर्भ में स्कूलों का प्रबंधन उसी तरह से प्रशासित होगा जैसा कि पहले अध्यादेश की घोषणा से पहले था।

घ. दो अलग-अलग निर्णय

11. इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष 27, न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर और न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा द्वारा दिए गए दो अलग-अलग निर्णयों में यह सहमति थी कि दूसरे अध्यादेश से आरंभ होते हुए, पुनः प्रख्यापित अध्यादेश अधिकारातीत थे। न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि जिस तरह से बिहार राज्य द्वारा अध्यादेशों की एक श्रृंखला जारी की गई, वह संविधान के साथ धोखाधड़ी है।विद्वान न्यायाधीश के विचार में:

> "24. .... बिहार सरकार ने यह भी नहीं कहा कि किसी भी तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता थी जब पहला अध्यादेश जारी किया गया था। यह नहीं बताया गया है जब विधानसभा का सत्र पहला अध्यादेश या बाद का कोई अध्यादेश अध्यादेश, सत्र में कितना समय लगा, क्या? अध्यादेश को उसके समक्ष रखा गया था या क्यों? दो वर्ष और चार महीने की अवधि के लिए कानून पारित नहीं हो सका। संवैधानिक योजना इस तरह के अध्यादेश की अनुमति नहीं देती है मेरे विचार में, सभी अध्यादेश कार्यपालिका के कार्यों की श्रृंखला को निरस्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया अनुच्छेद 213 की स्कीम। वे एक से रंग लेते हैं और एक दूसरे को सहारा देते हैं, (क) चौथी योजना में प्रस्थान करेगा और बाद के अध्यादेशों के होते हुए भी। सभी हैं। विशेष रूप से जब वहां असंवैधानिक और अवैध के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए कोई आधार नहीं दिखाया गया है। अनुच्छेद 213 इसके लिए कोई स्पष्टीकरण भी

> नहीं दिया गया है। एक के बाद एक अध्यादेश जारी करना।अगर पूरी कार्यवाही अनुच्छेद 213 में निहित शक्ति के साथ धोखाधड़ी है कि किसी अध्यादेश को विधानसभा के समक्ष रखा गया। पूरी कवायद प्रदत्त शक्ति के साथ धोखाधड़ी है (क) अनुच्छेद 213 द्वारा, विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाना कठिन है। यह अभिनिर्धारित करना कि पहला अध्यादेश विधिमान्य है, भले ही अन्य सभी अमान्य हो सकते हैं। (आई डी 658 पर)

वैकल्पिक रूप से, इस परिकल्पना पर कि पहला अध्यादेश वैध था, न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि राज्य विधानमंडल के फिर से इकट्ठा होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर यह काम करना बंद कर देता।कोई भी प्रभाव जो अध्यादेश के समाप्त होने के बाद समाप्त हो जाएगा, जब तक कि यह स्थायी न हो।एक स्थायी प्रभाव या एक स्थायी प्रकृति के अधिकार से क्या अभिप्राय है जो एक अध्यादेश के जीवन काल से परे है, के मुद्दे पर विचार करते हुए, विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

> "30. ...सभी आयोजन जो स्थायी किया जाता है, उसे अक्सर वापस किया जा सकता है। इसके लिए उदाहरण के लिए, जो निर्माण किया गया है उसे ध्वस्त किया जा सकता है। जो लाभ प्रदान किया गया है, उसे छीन लिया जा सकता है। किसी को यह आसानी से नहीं मान लेना चाहिए कि कोई अध्यादेश इसका एक स्थायी प्रभाव है, क्योंकि यह अपने स्वभाव से ही एक सीमित और अस्थायी शक्ति का प्रयोग है कार्यपालिका को दिया गया है।ऐसी शक्ति नहीं है आशा की जाती है कि इसका प्रयोग स्थायी रूप से किया जाएगा जब तक कि स्थिति की अनिवार्यता न हो मांग की है।मूल रूप से, किसी अध्यादेश का प्रभाव जब वह प्रभाव स्थायी हो तो उसे स्थायी माना जाए। अपरिवर्तनीय या संभवतः, जब यह अत्यधिक होगा इसे पलटने के लिए अव्यावहारिक या जनहित के विरुद्ध, उदाहरण के लिए, एक चुनाव जो मान्य है, उसे नहीं होना चाहिए फिर से अमान्य हो जाते हैं। इस अर्थ में, हम विचार करते हैं स्थायी या स्थायी के रूप में जो है। परिवर्तनीय जो प्रतिवर्ती है वो स्थायी नहीं होता है।" (आई डी 660 पर)

इस दृष्टिकोण से, जब निजी स्कूलों का अधिग्रहण करने वाला अध्यादेश समाप्त हो जाएगा, तो पूर्व की स्थिति फिर से बहाल हो जाएगी। पहला अध्यादेश कोई स्थायी प्रभाव नहीं रखता था। इसलिए, भले ही पहला अध्यादेश वैध हो (जो विद्वान न्यायाधीश के विचार में यह नहीं था), शिक्षकों को केवल इसकी अवधि के लिए सरकारी सेवक माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पहले अध्यादेश के अधीन कुछ भी नहीं किया गया था। चौथे अध्यादेश को अंतरिम स्थगन के परिणामस्वरूप पूरा नहीं किया जा सका और चूंकि सभी अध्यादेशों का संचालन बंद हो गया था और उनमें से किसी को भी प्रभावी रूप से स्थायी नहीं माना जा सकता था, इसलिए उन्हें लागू करने के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता था।

12. दूसरी ओर न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा पहले अध्यादेश की वैधता के संबंध में न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर के विचार से भिन्न थे। विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित प्रतिपादनाओं में अपने कारणों को तैयार किया:

> "59..... (1) यह काफी हद तक स्थापित है कि अध्यादेश "कानून" और उस आधार पर संपर्क किया जाना चाहिए।
>
> (2) एक अध्यादेश जिसकी अवधि समाप्त हो चुकी है, वही है। जिसमें विधायिका के अस्थायी अधिनियम के रूप में प्रभाव।
>
> (3) जब संविधान कहता है कि अध्यादेश बनाने की शक्ति विधायी शक्ति है और (ख) किसी अध्यादेश का वही बल होगा जो किसी अधिनियम का होता है, एक अध्यादेश में सभी को शामिल किया जाना चाहिए। विधायिका के किसी अधिनियम की विशेषताएं इसकी सभी घटनाएं, उन्मुक्तियां और इसके अंतर्गत आने वाली सीमाएं संविधान और इसे संविधान की तरह नहीं माना जा सकता कार्यकारी कार्रवाई या प्रशासनिक निर्णय।
>
> (4) के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अध्यादेश और उसके द्वारा सृजित अधिकार, यह नहीं हो सकता उन्होंने कहा कि जैसे ही अध्यादेश की अवधि समाप्त हो गई, अध्यादेश के तहत की गई कार्रवाई की वैधता उस कार्य की समाप्ति और अविधिमान्यता को पुनर्जीवित किया गया।

(5) अस्थाई अधिनियम की समाप्ति का क्या प्रभाव होगा? अधिकार की प्रकृति पर निर्भर होना चाहिए उपबंधों से उत्पन्न बाध्यता या अस्थाई अधिनियम और उनके स्वरूप के आधार पर क्या उक्त अधिकार और दायित्व स्थायी हैं या नहीं.

(6) यदि अस्थायी कानून द्वारा सृजित अधिकार या अध्यादेश स्थायी स्वरूप का है और इसमें व्यक्ति से वह अधिकार छीना नहीं जा सकता क्योंकि वह कानून जिसके द्वारा उसका सृजन किया गया था, समाप्त हो गया है।

(7) किसी व्यक्ति को, जिसे अस्थायी अधिनियमिति के अधीन कतिपय अधिकार या प्रास्थिति प्रदान की गई है, अस्थायी अधिनियमिति की समाप्ति के परिणामस्वरूप उस अधिकार या प्रास्थिति से वंचित नहीं किया जा सकता।

(8) कोई अध्यादेश तब तक प्रभावी रहेगा जब तक वह अनुच्छेद 213 के खंड (2) में वर्णित घटनाओं के घटित होने पर लागू नहीं हो जाता। यहां तक कि यदि यह प्रचालन बंद कर देता है तो भी स्पष्ट विधान को छोड़कर अध्यादेश का प्रभाव अपरिवर्तनीय है।

(9) किसी अध्यादेश की विधायिका द्वारा केवल अस्वीकृति से बंद या पूर्ण संव्यवहारों को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता।

(10) राज्य विधानमंडल अध्यादेश पारित किए जाने से पूर्व के मामलों की वही स्थिति अस्तित्व में लाने के लिए शक्तिहीन नहीं है, भले ही वे अध्यादेश के तहत पूर्ण हो जाएं और बंद कर दिए जाएं। अन्य संवैधानिक सीमाओं के अधीन रहते हुए इस आशय का एक अभिव्यक्त कानून भूतलक्षी प्रभाव से पारित किया जा सकता है।" (pg. (677-678)

विद्वान न्यायाधीश की दृष्टि सेः

"67..... पहले अध्यादेश का प्रभाव स्थायी प्रकृति का रहा है। अध्यादेश में जो कुछ भी कहा गया, उसे पूरा किया गया। इसका प्रभाव

> अपरिवर्तनीय था। यह अध्यादेश राज्य में संस्कृत विद्यालयों को उनके परिसंपत्तियों और कर्मचारियों सहित अपने अधिकार में लेने के एक विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रख्यापित किया गया था और यह किया गया था और विधायिका के पास इसे रद्द करने के लिए कोई कानून नहीं था, अध्यादेश का प्रभाव स्थायी प्रकृति का था। यह अध्यादेश विधायिका द्वारा अधिनियमित एक अस्थायी कानून की तरह है और यदि कानून निष्प्रभावी हो जाता है, तो इसके तहत जो कुछ भी हासिल किया गया है, उसे वापस नहीं किया जा सकता है।यदि किसी अस्थायी कानून के तहत भूमि का अधिग्रहण किया गया था और उस पर भवन का निर्माण किया गया था, तो यह नहीं कहा जा सकता था कि अस्थायी कानून के व्यपगत होने के बाद भवन नीचे खींच लिया और जमीन वापस मूल मालिक के पास आ गई।" (आई डी 683 पर)

इस दृष्टिकोण से, निहित अधिकारों को तब तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक कि विधायिका को उन्हें वापस लेने और प्रबंधन समिति में संपत्ति को फिर से निहित करने के लिए एक कानून लागू नहीं करना होता। जो अधिकार कर्मचारियों में निहित थे, उन्हें स्थायी स्वरूप का माना गया था, जो, यह माना गया था, केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता था क्योंकि अध्यादेश एक अस्थायी कानून की तरह काम करना बंद कर देता था।इस प्रकार न्यायमूर्ति वाधवा ने विवाद को दो दृष्टिकोणों से देखा। सबसे पहले, अध्यादेश को एक अस्थायी कानून के समान रखा गया था और इसे स्थायी प्रकृति के अधिकारों का सृजन करने वाला माना गया था जो अध्यादेश के प्रचालन के बंद होने पर अस्तित्व में रहेगा। दूसरा, अध्यादेश के तहत सृजित निहित अधिकारों को इस दृष्टिकोण से केवल विधायिका द्वारा अधिनियमित एक नए कानून द्वारा ही पलटा जा सकता है। दोनों न्यायाधीशों के दृष्टिकोणों के बीच मूल अंतर यह थाः न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि सभी अध्यादेश लागू करने और फिर से लागू करने की श्रृंखला का हिस्सा थे और उन्होंने संविधान के साथ धोखाधड़ी की, जबकि न्यायमूर्ति वाधवा ने कहा कि यह केवल पहले अध्यादेश के बाद फिर से लागू किया गया था जो अधिकार क्षेत्र से बाहर था।उनके विचार में पहला अध्यादेश संवैधानिक शक्ति का वैध प्रयोग था और इसने स्थायी अधिकारों का सृजन किया था जो अध्यादेश के लागू होने के बाद भी जारी रहेगा।इस स्थायी परिणाम को केवल कानून द्वारा ही पलटा जा सकता है।13

अब इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक है कि अध्यादेश बनाने की शक्ति के विकास और विस्तार का उल्लेख किया जाए।

ऐतिहासिक विकास

14 ई. 1 इंग्लैंड यूनाइटेड किंगडम में, घरेलू रूप से कानून बनाने का सम्राट का विशेषाधिकार लगभग चार सौ साल पहले सर एडवर्ड कोक द्वारा द केस ऑफ प्रोक्लेमेशन्स में अपनी राय से समाप्त कर दिया गया था।28. राय ने यह निर्णय दिया किः

> राजा अपनी घोषणा या अन्य तरीकों से कॉमन लॉ के किसी भी भाग को नहीं बदल सकता है, या कानून, या राज्य के रीति-रिवाज.

इंग्लैंड की विधि को तीन भागों में विभाजित किया गया हैःसामान्य कानून, स्टैच्यूट कानूनराजा की घोषणा उपरोक्त में से कोई नहीं थी।यह कहा जाता था कि राजा के पास कोई विशेषाधिकार नहीं था, लेकिन देश के कानून ने उसे अनुमति दी थी।ब्रिटिश नागरिकों पर कानून बनाने के लिए राजा की शक्ति के अवशेष 1689 में या किसी भी स्थिति में 1714 तक बिल ऑफ राइट्स द्वारा मिटा दिए गए थे।

गृह विभाग के लिए पंकिना बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट वाले मामले में अपने निर्णय में,

अपील न्यायालय की ओर से बोलते हुए लार्ड जस्टिस सेडली ने कहाःसम्राट के विशेषाधिकार का प्रयोग 1689 से चला आ रहा है-या शायद अधिक सटीक रूप से, जैसा कि एनसन के कानून और संविधान के रीति-रिवाज से पता चलता है, 1714 से-क्राउन के मंत्रियों को।यही वे लोग हैं जिन्हें अब संसद के स्पष्ट प्राधिकार के बिना कानून बनाने के लिए संवैधानिक रूप से मना किया गया हैःअतः प्रत्यायोजित विधान बनाने के लिए उन्हें वैधानिक शक्ति की आवश्यकता है।जैसा कि वाडिंगटन के लार्ड पार्कर ने द जमोरा [1916] 2 एसी 77,90 में कहाः

> उन विचारों को जो राजा इन काउंसिल या वास्तव में कार्यपालिका की किसी भी शाखा के पास हैं,

28 (1611) 12 कंपनी प्रतिनिधि 74 29 [2010] 3 डब्ल्यूएलआर 1526

इस देश में न्यायालयों द्वारा प्रशासित की जाने वाली विधि को विहित या परिवर्तित करना हमारे संविधान के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है।(जोर देते हुए)

) प्रदान किया गया है।

15 सर एडवर्ड कोक की राय के अनुसरण में इंग्लैंड में उद्घोषणा करने के लिए राजा की शक्ति के विकास का पता लगाते हुए, शुभंकर बांध ने इस विषय पर हाल ही में प्रकाशित एक पुस्तक में निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

हालांकि इस निर्णय से वैचारिक स्पष्टता आई है, शाही प्रथा अलग-अलग थी।बादशाहों का निर्माण जारी रहा अध्यादेश (गैरकानूनी प्रकार के) और लागू किए गए उन्हें भी।केवल स्थापना के साथ के अंत में संसदीय सर्वोच्चता सत्रहवीं शताब्दी में उस समय से अध्यादेश अंततः सुसंगत हो जाते हैं पर, यह हमेशा एक अधीनस्थ विधायी होगा 17वीं शताब्दी के अंत तक, कानून संसद के अंतिम अधिकार का प्रतिनिधित्व करते हैं (ख) विधान अधिनियमित करना जबकि सामान्यतः अध्यादेश, बोलना, कार्यपालिका के अधिक प्रतिनिधित्व करने के लिए आया सीमित प्राधिकरण को संकीर्ण और विशिष्ट बनाने के लिए

विनियम।

ई. 2 ब्रिटिश इंडिया 16 घोषणाओं द्वारा शासन करने के लिए इंग्लैंड में सम्राट की शक्ति का क्षीण होना ब्रिटिश उपनिवेशों में प्रचलित स्थिति के बिल्कुल विपरीत था।क्राउन के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का व्यापक अधिकार दिया गया था। भारतीय परिषद अधिनियम, 1861 ने गवर्नर जनरल को ऐसे निर्देश जारी करने की शक्ति प्रदान की, जिनके पास कानून की शक्ति थी।अध्यादेश जारी करने का अधिकार गवर्नर जनरल को दिया गया

धारा 23 द्वारा, दो शर्तों के अध्यधीनकोई अध्यादेश उसके प्रख्यापन से छह मास से अनधिक की अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा।भारत सरकार अधिनियम, 1915 के तहत अध्यादेश जारी करने की शक्ति बरकरार रखी गई थी।भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 42 में गवर्नर जनरल को उस समय अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई थी, जब संघीय विधानमंडल का सत्र नहीं चल रहा था।धारा 42 (2) में यह उपबंध किया गया था कि उस उपबंध के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का बल और प्रभाव संघीय विधानमंडल के

अधिनियम के समान होगा किंतु उसे विधानमंडल के समक्ष रखा जाना अपेक्षित था।यह अध्यादेश विधायिका के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर अथवा यदि उस अवधि से पहले विधायिका द्वारा इसे अस्वीकृत करने वाले संकल्प पारित कर दिए जाते हैं तो यह अध्यादेश लागू नहीं रहेगा।कुछ मामलों में गवर्नर जनरल को किसी अध्यादेश की घोषणा के लिए अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना होता था, जबकि अन्य मामलों में उसे महामहिम के निर्देशों पर कार्य करना होता था।धारा 43 गवर्नर जनरल को छह महीने की अवधि के लिए वैध और छह महीने की अवधि के लिए बढ़ाए जाने योग्य अध्यादेश जारी करने के लिए सक्षम बनाती है, यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि परिस्थितियां मौजूद हैं, जो उसे ऐसे कार्यों को संतोषजनक रूप से करने में सक्षम बनाने के लिए तत्काल कार्रवाई करने के लिए आवश्यक बनाती हैं, जिनके संबंध में उसे अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करना था।धारा 44 के तहत, गवर्नर जनरल को गवर्नर जनरल अधिनियम के रूप में एक कानून बनाने की शक्ति दी गई थी, जिसमें ऐसे प्रावधानों को शामिल किया गया था और वह अपने संदेश को संसद के चैम्बर में संलग्न कर सकता था।

विधायिका एक मसौदा विधेयक जिसे वे आवश्यक समझते थे।इसी तरह की शक्तियां प्रांतीय गवर्नरों में निहित थीं।अतः धारा 42,43 और 44 द्वारा गवर्नर जनरल को व्यापक शक्तियां प्रदान की गई।

संविधान सभा

17 संघ संविधान समिति को संविधान सभा द्वारा 30 अप्रैल, 1947 को 'संविधान के मुख्य सिद्धांतों' पर रिपोर्ट करने के लिए नियुक्त किया गया था।संवैधानिक सलाहकार बी एन राव द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन में अध्यादेश बनाने के लिए एक संवैधानिक शक्ति की परिकल्पना की गई थी।ज्ञापन में इस बात पर विचार किया गया कि जब संसद का सत्र नहीं चल रहा हो तो राष्ट्रपति तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता वाली परिस्थितियों से संतुष्ट होकर अध्यादेश जारी कर सकते हैं।यह अध्यादेश संसद के एक अधिनियम के समान प्रभावी होगा, लेकिन यह संसद के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह से अधिक की अवधि के लिए प्रभावी नहीं रहेगा (इस संदर्भ में देखें बी शिवा)

राव:भारत के संविधान का निर्माण।बी. एन. राव ने स्वीकार किया कि

औपनिवेशिक शासन के तहत अध्यादेश की काफी आलोचना की गई थी, लेकिन इन आशंकाओं को दूर करने का प्रयास किया गया था, जो इस आधार पर व्यक्त की गई थीं कि राष्ट्रपति आमतौर पर संसद के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों की सहायता और सलाह पर कार्य करेंगे और अध्यादेश बनाने की शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे।

18 संघ संविधान समिति की रिपोर्ट संविधान सभा को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात्, अध्यादेश बनाने की शक्ति पर 23 मई, 1949 को चर्चा की गई।प्रोफेसर के टी शाह ने कहा कि हालांकि इस तरह की शक्ति को उचित ठहराया जा सकता है

ऐसा लग सकता है कि यह कानून के शासन की अवहेलना थी।इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि शक्ति को इस तरह से संरचित किया जाना चाहिए कि आकस्मिक स्थितियों से निपटने के लिए एक असाधारण चरित्र को बनाए रखा जा सकेः

निश्चित रूप से असाधारण परिस्थितियों में, जैसे आपातकाल के मामले में, असाधारण का उपयोग शक्तियां आवश्यक और न्यायोचित दोनों होंगी।मैं सोचते हैं कि यह महत्वपूर्ण है, इसलिए यह स्पष्ट करना, शीर्षक में ही है कि यह एक स्पष्ट रूप से है असाधारण शक्ति जो

बिना विधायिका बुलाए कानून शक्ति प्रदान करता है।विधायी शक्ति-कार्यकारी प्रमुख नहीं होना चाहिए था।या यह रूप भी ले सकता है कोई कार्यकारी डिक्री या कोई भी रूप परिस्थितियों में उपयुक्त.मुद्दा यह है कि मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि हमें इसका उल्लेख नहीं करना चाहिए (ख) यहसूचित करता है कि विधि राष्ट्रपति की बनाई हुई शक्तियां किसी भी प्रकार की नहीं हैं। असाधारण शक्तियां।मुझे लगता है कि यह पर्याप्त है यह सदन को स्पष्ट और स्वीकार्य होगा।

संविधान सभा के एक अन्य सदस्य बी. पॉकर साहिब ने मसौदा अनुच्छेद 102 (1) में निम्नलिखित शब्दों में एक प्रावधान को शामिल करने के लिए एक संशोधन पेश कियाः

परंतु ऐसे अध्यादेश से किसी भी नागरिक को वंचित नहीं किया जाएगा। (ख) व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अपने अधिकार का कोई नागरिक, सिवाय सक्षम न्यायालय द्वारा विचारण के पश्चात् दोषसिद्धि। यह संशोधन नागरिक के मौलिक अधिकार को सुरक्षित करने के उद्देश्य से किया गया था, जिस पर अदालत में मुकदमा चलाया जा सके।

19 एच वी कामथ ने एक संशोधन पेश किया जो यह सुनिश्चित करेगा कि प्रख्यापन पर एक अध्यादेश चार के भीतर संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाए इसकी घोषणा के सप्ताह.उन्होंने कहा कि जहां तक हम कर सकते हैं, अध्यादेश लाने की शक्ति को सीमित करने और इस अनुच्छेद के दुरुपयोग के खिलाफ संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक था।इस आपत्ति का जवाब यह कहते हुए दिया गया कि चूंकि संसद को वर्ष में कम से कम दो बार आयोजित करना पड़ता है और पिछली बैठक और अगले सत्र के लिए निर्धारित तिथि के बीच छह महीने से अधिक का हस्तक्षेप नहीं होता है, इसलिए अध्यादेश साढ़े सात महीने से अधिक अवधि तक जारी नहीं रह सकता है।

20 पंडित एच. एन. कुंजरू ने इस आशय का एक संशोधन पेश किया कि किसी अध्यादेश की अवधि इसके प्रख्यापन से तीस दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए (संसद के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह के बजाय)।उन्होंने कहा कि कई ऐसे देश हैं जहां कार्यपालिका के पास अध्यादेश जारी करने की शक्ति नहीं है और नई परिस्थितियों में कार्यपालिका को भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा प्रदत्त प्रकृति की व्यापक शक्तियों से लैस करने का कोई औचित्य नहीं है।उन्होंने कहा कि अध्यादेश लागू करने के लिए साढ़े सात महीने की अवधि बहुत लंबी है।कुंजरू ने कहाः

"और इसलिए मैं समझता हूं कि वो समय लंबा होना चाहिए (क) विधायिका को बैठक करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त है, और असाधारण स्थिति पर विचार करने के लिए किसी अध्यादेश का प्रख्यापन, निम्नलिखित को प्रभावित करने वाले कारकों द्वारा आवश्यक बनाया गया अध्यादेश

(क) देश की शांति या सुरक्षा लेकिन जब अध्यादेश शांति से संबंधित हो या देश की सुरक्षा, या इसी तरह की परिस्थितियों में, के द्वारा की जाने वाली असाधारण कार्रवाई की अपेक्षा एक अध्यादेश के तहत कार्यकारी, तो मुझे लगता है कि हम यह देखना होगा कि वह अवधि जिसके दौरान अध्यादेश यथासंभव कम से कम समय में लागू रहता है, और यह कि कोई भी कानून जो आवश्यक हो संसद द्वारा पारित किया जाना चाहिए सभी परिस्थितियों पर विचार करना। इसलिए यह आवश्यक है कि विधायिका को एक अवसर दिया जाना चाहिए,

न कि केवल विचार करने का (क) अध्यादेश पारित करने की आवश्यकता की स्थिति, इसके अलावा अध्यादेश की शर्तें भी लागू होंगी।

21 प्रोफेसर के. टी. शाह ने यह विचार व्यक्त किया कि भले ही असाधारण परिस्थितियों से निपटने के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया था, इसे संसद की सभा के तुरंत बाद रखा जाना चाहिए और जब तक इसे एक विशिष्ट प्रस्ताव द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है, तब तक इसे तुरंत काम करना बंद कर देना चाहिए।उन्होंने उस प्रतिबंध का समर्थन किया जो उन्होंने निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तावित किया थाः

मुझे यकीन है कि हममें से ज्यादातर लोग इसे एक निश्चित डिग्री (हुक्मनामा) के साथ देखते हैं आदेश बनाने की शक्ति को नापसंद या अविश्वास करना मुख्य कार्यकारी में निहित है। हालांकि, हम कर सकते हैं चाहे कितना भी आवश्यक क्यों न हो, उसे पहनना यह उचित हो सकता है, यह कानून के शासन का खंडन है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह संविधान द्वारा पारित कानून नहीं है। (ख) सामान्य विधान-मंडल और फिर भी उसका बल होगा कानून जो अवांछनीय हो।भले ही यह अपरिहार्य, और उससे अधिक, भले ही यह हो आपातकाल के समय में न्यायोचित है, यह तथ्य कि यह एक असाधारण या आपातकालीन शक्ति है, कि यह कार्यपालिका द्वारा पारित डिक्री या आदेश है विधायिका द्वारा विचार-विमर्श किए बिना, यह स्पष्ट करें कि इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है, और यह आवश्यक है एक मिनट से अधिक समय तक चलने की अनुमति नहीं दी जाएगी असाधारण परिस्थितियों की आवश्यकता होगी।

22 सरदार हुकम सिंह ने एक संशोधन पेश किया जिसमें मंत्रिपरिषद से परामर्श करने की आवश्यकता का उपबंध किया गयाः यह कहा जा सकता है कि सम्मेलन स्वतः बढ़ेंगे और राष्ट्रपति को उनके मंत्रियों की सलाह।मेरा निवेदन है कि यहाँ सम्मेलनों का विकास होना अभी बाकी है।हम हमारे राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रमुख बनाना और हम उसे ऐसी शक्तियों के साथ निवेश कर रहे हैं जो प्रकट होती हैं

तानाशाही.सम्मेलन धीरे-धीरे आगे बढ़ेंगे और यह संविधान लिखा गया है और हर विस्तार किया जा रहा है इस पर विचार करते हुए कि हमें इस तथ्य को क्यों छोड़ना चाहिए किसी भी व्यक्ति की सनक या सनक, चाहे वह कितना भी ऊंचा क्यों न हो हो सकता है?यदि हम

स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि उन्हें कार्रवाई करनी है उनके मंत्रियों की सलाह अपमानजनक नहीं है। उसकी स्थिति।

23 प्रस्तावित संशोधनों का पी. एस. देशमुख और डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा विरोध किया गया था।पी. एस. देशमुख ने कहा कि मसौदा अनुच्छेद में यह प्रावधान है कि यदि और जहां तक एक अध्यादेश में ऐसा कोई प्रावधान है जिसे संसद संविधान के तहत अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं है, तो वह शून्य होगा।डॉ. अम्बेडकर ने संशोधनों का विरोध करते हुए कहा कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 की धारा 43 के तहत गवर्नर जनरल एक समानांतर विधायी प्राधिकारी थे, जिनके पास संसद के सत्र के दौरान भी कानून बनाने की स्वतंत्रता शक्ति थी।शक्ति प्रदान करने के औचित्य को उचित ठहराते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहाःसदन के सामने मेरा निवेदन है कि इसकी कल्पना करना मुश्किल नहीं है

ऐसे मामलों में जहां किसी विशिष्ट समय में विद्यमान साधारण विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियां ऐसी स्थिति से निपटने में कमी हो सकती है जो अचानक और तत्काल उत्पन्न हो सकती है। कार्यपालिका को क्या करना चाहिए?कार्यपालिका के पास एक नई स्थिति पैदा हो गई है, जिसके बारे में उसे पूर्वानुमान से निपटना होगा

-आपातकाल से निपटा जाना चाहिए और मुझे ऐसा लगता है कि एकमात्र समाधान यह है कि राष्ट्रपति को एक कानून लागू करने की शक्ति प्रदान की जाए जो कार्यपालिका को उस विशेष स्थिति से निपटने में सक्षम बनाएगा क्योंकि वह कानून की सामान्य प्रक्रिया का सहारा नहीं ले सकता क्योंकि, फिर से, विधायिका का सत्र नहीं चल रहा है।

24 डॉ. अम्बेडकर ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया कि एक अध्यादेश अपने प्रख्यापन से तीस दिन की समाप्ति पर स्वतः ही ई-एंड पर आ जाना चाहिए।एच. एन. कुंजरू द्वारा व्यक्त की गई आपत्तियां

अध्यादेश को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया कि संसद को छह महीने से अधिक के अंतराल पर आयोजित नहीं किया जाना था।इसके अलावा, उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करना है।तदनुसार, अनुच्छेद 102 के मसौदे को मंजूरी दी गई।

जी-अध्यादेश बनाने की शक्ति

25 संविधान के अध्याय 4 में एक संवैधानिक उपबंध हैःअनुच्छेद 213.अध्याय 4 का शीर्षक शक्ति की प्रकृति का वर्णनात्मक है।इस शक्ति को राज्यपाल की विधायी शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है।अनुच्छेद 213 के पार्श्व नोट में इसे विधानमंडल के अवकाश के दौरान अध्यादेश जारी करने की राज्यपाल की शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है।

26 संविधान ने राष्ट्रपति की अध्यादेश बनाने की शक्ति को प्रतिपादित करते समय इसी पद्धति का अनुसरण किया है।अध्याय 3 में एकमात्र अनुच्छेद, अनुच्छेद 123 शामिल है जो संसद के सत्र में नहीं होने पर अध्यादेश जारी करने के लिए राष्ट्रपति की विधायी शक्ति को निर्दिष्ट करता है।

अनुच्छेद 213 में निम्नलिखित प्रावधान किया गया हैः

213 विधान-मंडल के अवकाश के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने की राज्यपाल की शक्ति(1) यदि

किसी भी समय, सिवाय उस समय के जब किसी राज्य की विधान सभा का सत्र चल रहा हो या जहां किसी राज्य में विधान परिषद हो, सिवाय उस समय के जब विधान मंडल के दोनों सदन सत्र में हों, राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है, वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत होः

परंतु राज्यपाल, राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना, ऐसा कोई अध्यादेश प्रख्यापित नहीं करेगा यदि -

(क) उसी उपबंध अंतर्विष्ट करने वाले किसी विधेयक को विधान-मंडल में पुरःस्थापित करने के लिए इस संविधान के अधीन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी अपेक्षित होती. या

(ख) उसने उसी उपबंध वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना आवश्यक समझा होता, या

(ग) राज्य के विधान-मंडल का वही उपबंध वाला कोई अधिनियम इस संविधान के अधीन तब तक अविधिमान्य होता जब तक कि राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किए जाने के पश्चात् उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त न हो गई होती।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो उस राज्य के विधान-मंडल के किसी अधिनियम का है जिसे राज्यपाल ने अनुमति दी है, किंतु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश -

(क) राज्य की विधान सभा के समक्ष या जहां राज्य में विधान परिषद है वहां दोनों सदनों के समक्ष रखी जाएगी और विधान-मंडल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले उसका अनुमोदन करने वाला संकल्प विधान सभा द्वारा पारित कर दिया जाता है और विधान परिषद्, यदि कोई हो, उस पर सहमत हो जाती है तो, यथास्थिति, संकल्प के पारित होने पर या विधान परिषद् द्वारा उस संकल्प से सहमत होने पर, प्रवर्तन में नहीं रहेगी, और

(ख) राज्यपाल द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकेगा।

व्याख्या.जहां विधान परिषद वाले राज्य के विधान-मंडल के सदनों को विभिन्न तारीखों को पुनः समवेत होने के लिए आहूत किया जाता है, वहां इस खंड के प्रयोजनों के लिए छह सप्ताह की अवधि की गणना उन तारीखों में से बाद की तारीख से की जाएगी।(3) यदि और जहां तक इस अनुच्छेद के अधीन अध्यादेश कोई ऐसा उपबंध करता है जो राज्य के विधान-मंडल के किसी अधिनियम में अधिनियमित किए जाने पर विधिमान्य नहीं होता तो और वहां तक वह शून्य होगाः

परन्तु निम्नलिखित के प्रयोजनों के लिए, इस संविधान के प्रभाव से संबंधित उपबंध किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी ऐसे अधिनियम का, जो - संसद के किसी अधिनियम या किसी मौजूदा अधिनियम के विरुद्ध में प्रगणित किसी विषय के संबंध में विधि समवर्ती सूची, एक अध्यादेश जो निम्नलिखित के अधीन प्रख्यापित किया गया है इस अनुच्छेद के अनुसरण में राष्ट्रपति के बारे में यह समझा जाएगा कि वह राज्य का विधानमंडल जिसे आरक्षित कर दिया गया है राष्ट्रपति के विचार के लिए और उसके द्वारा अनुमति प्राप्त करने के लिए।

27 अध्यादेश प्रख्यापित करने के लिए राज्यपाल को प्रदत्त प्राधिकार की दो अपेक्षाएं हैं। पहला यह है कि कोई अध्यादेश तभी जारी किया जा सकता है जब राज्य विधानसभा का सत्र नहीं चल रहा हो।जब विधायिका का सत्र चल रहा हो तो कोई कानून केवल उसके द्वारा ही बनाया जा सकता है न कि राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करके।दूसरी आवश्यकता यह

है कि राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने से पहले परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट होना होगा, जिससे तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो जाए।परिस्थितियों का अस्तित्व एक वस्तुनिष्ठ तथ्य है।राज्यपाल से अपेक्षा की जाती है कि वह परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में संतुष्टि प्रदान करें, जिसके कारण तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो जाता है। आवश्यकता केवल वांछनीयता से अलग है।"" "" "" "तत्काल कार्रवाई" "" "के साथ" "" "आवश्यकता" "" "अभिव्यक्ति इस भावना को व्यक्त करती है कि उस अवधि के दौरान जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा है, किसी अध्यादेश को प्रख्यापित करना आवश्यक है।" ""इसके बाद राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है, जो उसे परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक प्रतीत होता है।ये दोनों आवश्यकताएं स्पष्ट रूप से अधिदेशित सीमाओं के भीतर अध्यादेश बनाने की राज्यपाल की शक्ति को सीमित करने के संवैधानिक आशय को इंगित करती हैं।पहली सीमा उस समय का वर्णन करती है जब कोई अध्यादेश प्रख्यापित किया जा सकता हैः

अध्यादेश तब जारी नहीं किया जा सकता है जब विधायिका का सत्र चल रहा हो।दूसरी आवश्यकता यह है कि परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में राज्यपाल की पूर्व संतुष्टि पर अध्यादेश बनाने की शक्ति के लिए तत्काल कार्रवाई आवश्यक है।राज्यपाल को प्रदत्त शक्ति की प्रकृति ऐसी नहीं है और यह राज्यपाल को समानांतर कानून बनाने वाला प्राधिकारी नहीं बनाती है।विधायिका कानून बनाने की शक्ति का संवैधानिक भंडार है।राज्यपाल की विधायी शक्ति संविधान द्वारा अभिप्रेत है कि वह विधिवत निर्वाचित विधानमंडलों के विधि निर्माण प्राधिकार का प्रतिस्थापन न हो।राष्ट्रपति की अध्यादेश बनाने की शक्ति के संबंध में भी यही स्थिति होगी।अनुच्छेद 213 (1) में उन परिस्थितियों को भी निर्दिष्ट किया गया है जिनमें राज्यपाल राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना अध्यादेश प्रख्यापित नहीं कर सकता है।तीन स्थितियां जहां राष्ट्रपति के अनुदेशों की आवश्यकता होती है वे इस प्रकार हैंः

(i) जहां एक ही उपबंध वाले विधेयक को विधायिका में पुरःस्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता होती है. (ii) जहां एक ही उपबंध वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किया जाना राज्यपाल द्वारा आवश्यक समझा जाएगा. और

(iii) जहां राज्य विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून में उन्हीं उपबंधों को शामिल करने के लिए राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता होगी, ऐसा न करने पर यह अमान्य हो जाएगा।

28 उपरोक्त शर्तों में से पहली शर्त संविधान के अनुच्छेद 304 (ख) के परंतुक जैसी स्थिति में उत्पन्न होती है।अनुच्छेद 304 (बी) के तहत, किसी राज्य के विधानमंडल को उस राज्य के साथ या उसके भीतर व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने की अनुमति है (अनुच्छेद 301 या 303 में किसी बात के होते हुए भी)।परन्तुक में निम्नलिखित की अपेक्षा है

(ख) के प्रयोजनों के लिए किसी विधेयक या संशोधन को राज्य विधानमंडल में पुरःस्थापित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी.संविधान के अनुच्छेद 200 में दूसरी आवश्यकता (ii) का एक उदाहरण दिया गया है जिसके तहत राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राष्ट्रपति के विचार के लिए कोई भी विधेयक आरक्षित रखे, जो उनकी राय में, यदि इसे कानून बनाना है, तो उच्च न्यायालय की शक्तियों का अल्पीकरण करेगा ताकि उस स्थिति को खतरे में डाला जा सके जिसे संविधान द्वारा भरने के लिए इसे तैयार किया गया है।अनुच्छेद 254 में ऐसी स्थितियों को स्पष्ट किया गया है जहां समवर्ती सूची (सातवीं अनुसूची) में प्रगणित किसी मामले पर राज्य विधानमंडल द्वारा बनाया गया कानून संसद द्वारा बनाए गए कानून के प्रतिकूल है।राज्य का कानून तभी प्रभावी होगा जब और जिस हद तक उसे राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई हो।इन तीनों स्थितियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्यादेश जारी करने की शक्ति का प्रयोग करते समय राज्यपाल उन सीमाओं से मुक्त नहीं होता है जिनके अधीन राज्य विधानमंडल की कानून बनाने की शक्ति है।29 राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश (अनुच्छेद 213 के खंड 2 के रूप में) का वही बल और प्रभाव है जो राज्यपाल द्वारा अनुमोदित राज्य विधानमंडल के अधिनियम का है।हालांकि-और यह एक महत्वपूर्ण महत्व का मामला है-खंड 2 में इसी दिशा में महत्वपूर्ण संवैधानिक स्थितियों का उल्लेख किया गया है। कल्पना के अस्तित्व में आने से पहले इन शर्तों को पूरा करना होगा।इन शर्तों की प्रस्तावना 'लेकिन प्रत्येक ऐसे अध्यादेश' से की गई है, जिसका अर्थ है कि संवैधानिक कल्पना उपखंड (क) और (ख) में निर्धारित बातों के अधीन है।(क) में यह उपबंध किया गया है कि अध्यादेश को विधान सभा के समक्ष रखा जाएगा।

(क) राज्य या दोनों सदनों के समक्ष द्विसदनीय विधायिका के मामले में.क्या राज्य विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने की आवश्यकता है?इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि ऐसा है।"" "" "" "रखा जाएगा" "" "अभिव्यक्ति एक सकारात्मक जनादेश है जिसमें कोई अपवाद नहीं है।" ""यह कि अनुच्छेद 213 के खंड 2 के उपखंड (क) में 'होगा' शब्द पूरी तरह से इस

प्रावधान को पढ़ने से उभर कर सामने आता है।जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, कोई अध्यादेश तभी प्रख्यापित किया जा सकता है जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा हो। विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह पूरे होने पर अध्यादेश '' निष्क्रिय हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, जब विधायिका का सत्र फिर से बुलाया जाता है तो अध्यादेश की अवधि होती है जो विधायिका की बैठक के छह सप्ताह बाद समाप्त हो जाती है।इसके बाद यह काम करना बंद कर देता है।द्विसदनीय विधानमंडल के मामले में, जहां दोनों सदनों को अलग-अलग तारीखों पर फिर से इकट्ठा होने के लिए बुलाया जाता है, छह सप्ताह की अवधि उन तारीखों के बाद के संदर्भ में गिनी जाती है।अनुच्छेद 174 में यह शर्त रखी गई है कि राज्य विधायिका की अंतिम बैठक पूरी होने के छह महीने के भीतर उसकी बैठक बुलाई जानी चाहिए। नतीजतन, संवैधानिक स्थिति यह है कि किसी अध्यादेश का जीवन विधायिका के पुनः समवेत होने के छह महीने और छह सप्ताह से अधिक नहीं हो सकता है।संविधान में विधायिका के पुनः समवेत होने को जो महत्व दिया गया है वह इसलिए है क्योंकि सर्वप्रथम वह तारीख छह सप्ताह की अवधि के प्रारंभ का निर्धारण करती है जिस पर अध्यादेश का प्रवर्तन समाप्त हो जाएगा।लेकिन इससे भी अधिक मौलिक महत्व है, जो राज्य विधायिका के समक्ष रखे जाने वाले अध्यादेश के अधिदेश से जुड़ा है।अध्यादेश की पुनर्रचना के छह सप्ताह की अवधि के भीतर उसका प्रवर्तन समाप्त हो जाएगा।

विधायिका यदि विधायिका द्वारा इसे अस्वीकृत करने वाला कोई संकल्प पारित किया जाता है।राज्यपाल किसी भी समय अध्यादेश को वापस ले सकता है।इस प्रकार किसी अध्यादेश का कार्यकाल समाप्त हो जाता हैः

(i) विधान-मंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर अध्यादेश के प्रवर्तन में न रहने से, या

(ii) यदि राज्य विधानमंडल के किसी प्रस्ताव द्वारा अध्यादेश को अस्वीकृत कर दिया जाता है, जिस स्थिति में वह इसे अस्वीकृत करने वाले प्रस्ताव पर अमल करना बंद कर देता है या

(iii) राज्यपाल द्वारा अध्यादेश वापस लिए जाने की स्थिति में।

30 विधायिका के समक्ष अध्यादेश रखना आज्ञापक है।पाठ्य रूप से, यह भाव कि यह एक अनिवार्य आवश्यकता है, इस अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है, लेकिन ऐसा प्रत्येक अध्यादेश विधान सभा के समक्ष रखा जाएगा।यद्यपि संविधान में यह अवधारणा की गई है कि

अध्यादेश का प्रभाव राज्य विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के समान होगा, यह राज्य विधायिका के समक्ष रखे जाने और उपखंड (क) और (ख) में निर्धारित तरीके से समाप्त होने के अधीन है।

31 राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश रखने से अध्यादेश बनाने की शक्ति पर विधायी नियंत्रण का उद्देश्य पूरा होता है।अध्यादेशों द्वारा कानून बनाना कानून बनाने का एक सामान्य स्रोत नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य विधायिका के अवकाश के दौरान उभरती असाधारण परिस्थितियों से निपटना है।राज्यपाल किसी अध्यादेश को प्रख्यापित करते समय एक स्वतंत्रता विधायिका का गठन नहीं करता है, बल्कि अनुच्छेद 163 के तहत मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करता है।मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से निर्वाचित विधायी निकाय के प्रति उत्तरदायी होती है जिसके प्रति सरकार जवाबदेह होती है।-----

संविधान के अनुच्छेद 245 और 246 के तहत संसद और राज्य विधानसभाओं में कानून बनाने की शक्ति है, जिनके बीच विधायी क्षेत्रों को सातवीं अनुसूची में वितरित किया गया है। राष्ट्रपति (अनुच्छेद 123 के तहत) और राज्यपालों (अनुच्छेद 213 के तहत) की अध्यादेश बनाने की शक्ति पर संसद और राज्य विधानसभाओं का संवैधानिक नियंत्रण लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित विधायिका की सर्वोच्चता के लिए आवश्यक है।विधायिका का पुनः संयोजन सत्र में अनुपस्थिति के दौरान प्रख्यापित अध्यादेश की वैधता के लिए बाहरी सीमा को परिभाषित करता है।उस अवधि के भीतर, विधायिका को अध्यादेश को अस्वीकृत करने का अधिकार है। विधायी निकाय के समक्ष अध्यादेश रखने की आवश्यकता यह सुनिश्चित करने के संवैधानिक उद्देश्य को पूरा करती है कि अध्यादेश के प्रावधानों पर विधायिका में बहस हो और उन पर चर्चा हो।विधायिका के पास विधायी शक्तियों का पूर्ण विस्तार है और उन शक्तियों की घटना के रूप में किसी अध्यादेश को अस्वीकृत करने के लिए अभिव्यक्त संवैधानिक प्राधिकार है। यदि किसी अध्यादेश को अनुच्छेद 213 (2) (ए) द्वारा निर्धारित अवधि के बाद भी जारी रखना है, तो विधायिका द्वारा इसके प्रावधानों को शामिल करते हुए एक कानून बनाना होगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे संविधान में यह प्रावधान नहीं है कि कोई अध्यादेश राज्य विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के रूप में केवल उसका अनुमोदन करने वाले प्रस्ताव के पारित होने पर ही अपना स्वरूप धारण कर लेगा।अनुच्छेद 213 (2) (क) द्वारा विहित अवधि से परे अधिनियमित कानून का स्वरूप ग्रहण करने के लिए, एक कानून अधिनियमित किया

जाना चाहिए।विधायिका के समक्ष अध्यादेश को रखना एक संवैधानिक आवश्यकता है जिसका अंतर्निहित उद्देश्य और औचित्य यह है कि विधायिका

क्या कोई विधि बनाई जानी चाहिए या क्या अध्यादेश को अस्वीकृत किया जाना चाहिए।

32 राज्य विधानमंडल के समक्ष अध्यादेश लाने की असफलता अनुच्छेद 213 (2) द्वारा अधिरोपित संवैधानिक बाध्यता का गंभीर उल्लंघन है।सदन के समक्ष एक अध्यादेश रखे जाने पर ही इसे औपचारिक रूप से विधायिका के संज्ञान में लाया जाता है।अध्यादेश लाने में विफलता एक गंभीर उल्लंघन है क्योंकि यह अध्यादेश से निपटने के लिए विधायिका की क्षमता को प्रभावित कर सकता है।हम एक पल के लिए यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि विधायिका ऐसी स्थिति से नहीं निपट सकती है जहां तत्कालीन सरकार ने विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने के अपने संवैधानिक दायित्व का उल्लंघन किया हो।इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस स्थिति में भी विधायिका अनुच्छेद 213 (2) (ए) के तहत अपनी शक्तियों का इस्तेमाल कर सकती है।तथापि, राज्य विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने की आवश्यकता एक अनिवार्य बाध्यता है और यह केवल निर्देशिका प्रकृति का नहीं है।हम देखेंगे कि वर्तमान मामले में बिहार के राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करने और फिर से प्रख्यापित करने के लिए किस प्रकार एक पैटर्न का अनुसरण किया गया था, जिनमें से कोई भी राज्य विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया था।इस तरह के आचरण से सत्ता का रंगीन प्रयोग और संवैधानिक अधिकार का दुरुपयोग होगा।अब यह इस पृष्ठभूमि में है और अब तक अनुच्छेद 213 के उपबंधों की व्याख्या करने के बाद, यह आवश्यक हो जाता है कि इस विषय पर पूर्व निर्णयों और संवैधानिक उपबंधों के निर्वचन में बारीकियों का उल्लेख किया जाए।

एच मिसाल

एच. 1 शक्ति की प्रकृति

33 दोनों अध्यायों III और IV के शीर्षकों से यह पता चलता है कि अध्यादेशों को प्रख्यापित करते समय, अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति और अनुच्छेद 213 के अधीन राज्यपाल विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।यह कि अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित कानून का है, यह इंगित करता है कि इसके संचालन और परिणाम के संदर्भ में, अध्यादेश बनाने की शक्ति को कानून बनाने की शक्ति के समान आधार पर रखा गया है।कानून बनाते समय कानून बनाने वाली संस्था-चाहे वह संसद

हो या राज्य विधानसभाएं-(i) भाग 3 में निहित मौलिक अधिकारों (ii) संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण और (iii) संवैधानिक सीमाओं को व्यक्त करने से उत्पन्न संवैधानिक सीमाओं के अधीन हैं।राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 123 के तहत और राज्यपालों द्वारा अनुच्छेद 213 के तहत किए गए अध्यादेश समान संवैधानिक प्रतिबंधों के अधीन हैं।कोई अध्यादेश गारंटीकृत मूल अधिकार के उल्लंघन पर आधारित चुनौती के प्रति अतिसंवेदनशील होता है और यह भाग 3 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकार के उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगा। अध्यादेश उन क्षेत्रों में राष्ट्रपति द्वारा बनाया जा सकता है जो संसद और राज्यपालों की विधायी क्षमता के भीतर आते हैं, जहां राज्य विधानमंडल कानून बनाने के लिए सक्षम हैं। अनुच्छेद 13 में यह उपबंध किया गया है कि कोई विधि उस सीमा तक शून्य होगी जहां तक वह भाग 3 से असंगत है और उस प्रयोजन के लिए, 'विधि' अभिव्यक्ति को खंड (3) (क) में किसी अध्यादेश को सम्मिलित करने के लिए परिभाषित किया गया है।संविधान के अनुच्छेद 367 (2) में यह प्रावधान है किः

367 व्याख्या

इस संविधान में संसद के या उसके द्वारा बनाए गए अधिनियमों या विधियों या किसी राज्य के विधान-मंडल के या उसके द्वारा बनाए गए अधिनियमों या विधियों के प्रति किसी निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत किसी अध्यादेश के प्रति निर्देश है। राष्ट्रपति द्वारा बनाया गया या बनाया गया अध्यादेश, यथास्थिति, किसी राज्यपाल द्वारा

इन उपबंधों की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने आर. के. गर्ग बनाम भारत संघ 32 में इस कथन को अस्वीकार कर दिया कि अनुच्छेद 123 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करते समय राष्ट्रपति को कर विधियों में संशोधन करने या उनमें परिवर्तन करने की कोई शक्ति नहीं थी।विधायी शक्ति विशेष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों की होनी चाहिए और ऐसी शक्ति कार्यपालिका में निहित करना अलोकतांत्रिक है क्योंकि इससे कार्यपालिका विधायिका में बहस को जोखिम में डाले बिना एक साधारण विधेयक को पारित करके अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है।संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिए गए भाषण का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने कहा कि इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति को प्रदत्त विधायी शक्ति विधान की समानांतर शक्ति नहीं है।न्यायालय ने जिन उपबंधों पर बल दिया उनमें शक्तियों का प्रयोग कब किया जा सकता है और अध्यादेश की अवधि की सीमाएं

शामिल हैं।संविधान पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियों में विधायी नियंत्रण के तत्व पर ध्यानपूर्वक जोर दियाः

"..... ऐसी शक्ति प्रदान करना प्रतीत हो सकता है। अलोकतांत्रिक हो, लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि कार्यपालिका विधायिका के प्रति स्पष्ट रूप से जवाबदेह है और यदि राष्ट्रपति, कार्यपालिका की सहायता और सलाह पर (ख) कार्यपालिका, दुरुपयोग में अध्यादेश प्रख्यापित करती है या इस शक्ति का दुरुपयोग केवल विधायिका ही नहीं कर सकती (ख) अध्यादेश को अस्वीकृत करने वाला संकल्प पारित करें, किंतु अविश्वास प्रस्ताव भी पारित किया जा सकता है कार्यकारी.संविधान के सिद्धांत में है विधायिका पर कानून का पूर्ण नियंत्रण कार्यकारी, क्योंकि अगर कार्यकारी दुर्व्यवहार करता है या विधायिका का विश्वास खो देता है, यह हो सकता है विधायिका द्वारा बाहर फेंक दिया गया।(पैरा 4 में)

संविधान पीठ की राय में, "राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश और संसद द्वारा पारित अधिनियम के बीच कोई गुणात्मक अंतर नहीं है।इसी दृष्टिकोण को इस न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ द्वारा ए. के. रॉय बनाम भारत संघ 34 में अपनाया गया था, जहां इस न्यायालय ने सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए संसद द्वारा बनाए गए कानून और राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश के बीच सटीक समीकरण के बारे में बात की थीराष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश की वैधता को चुनौती देते हुए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था कि अध्यादेश विधायी शक्ति का नहीं, बल्कि कार्यकारी शक्ति का प्रयोग है।इस दलील को खारिज करते हुए संविधान पीठ ने कहा किः

14. विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के बीच सिद्धांत और राष्ट्रपति द्वारा जारी एक अध्यादेश।दोनों ने, समान रूप से, विधायी के प्रयोग के उत्पाद हैं शक्ति और, इसलिए, दोनों समान रूप से अधीन हैं वे सीमाएं जो संविधान ने निर्धारित की हैं उस शक्ति पर।(पृष्ठ 291 पर आईडी)

गर्ग और ए. के. रॉय की संविधान पीठ के दोनों फैसलों ने इस दलील को खारिज कर दिया कि अध्यादेश बनाने की शक्ति विधायी प्रकृति और चरित्र में नहीं है।इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी अध्यादेश को प्रख्यापित करने की शक्ति एक विधायी शक्ति है जो यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपालों को प्रदान की गई है।तथापि, इस बात पर बल देना आवश्यक है कि

जब आर. के. गर्ग के मामले में लिया गया निर्णय राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश और संसद के अधिनियम के बीच कोई गुणात्मक अंतर नहीं होने की बात करता है और ए. के. रॉय के मामले में लिया गया निर्णय दोनों के बीच सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए सटीक समीकरण की बात करता है, ये टिप्पणियां इस सिद्धांत के संदर्भ में हैं कि संविधान के अनुच्छेद 123 या अनुच्छेद 213 के तहत प्रख्यापित अध्यादेश उसी संवैधानिक अवरोधों के अधीन है जो विधायिका के अधिनियमन को नियंत्रित करता है।तथापि, संविधान पीठों के दोनों निर्णयों में किसी अध्यादेश की विरचना करते समय विधायी शक्ति का प्रयोग करने में कार्यपालिका द्वारा शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध सुनिश्चित करने के लिए संविधान द्वारा पुरःस्थापित सुरक्षा उपायों पर महत्वपूर्ण बल दिया गया है।आर. के. गर्ग के निर्णय में कार्यपालिका द्वारा बनाए गए अध्यादेश पर विधायी नियंत्रण के तत्व पर जोर दिया गया था।ए. के. राय के मामले में संविधान पीठ ने यह उल्लेख करते हुए कि संविधान सभा ने संघ और राज्यों में कार्यपालिका के प्रमुखों को एक आवश्यक बुराई के रूप में एक अध्यादेश बनाने की शक्ति प्रदान की है, इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

> 16..... उस शक्ति का उपयोग असाधारण परिस्थितियों का सामना करने के लिए किया जाना था और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विकृत नहीं किया जाना था।संविधान सभा ने लोगों को यह आश्वासन दिया कि एक असाधारण शक्ति का उपयोग संविधान के साथ छल को बनाए रखने के लिए नहीं किया जाएगा, जिसकी कल्पना बहुत विश्वास और दृष्टि के साथ की गई है।सभी स्थितियों में यह आश्वासन सही होना चाहिए और संस्थापकों द्वारा सरकार की शक्तियों और लोगों की स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए।(पृष्ठ 292-293 पर आईडी)

35 जबकि संविधान अनुबंधित करता है कि अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो विधायिका द्वारा अधिनियमित विधि का है, यह आवश्यक है कि

इस बात पर जोर देता है कि अनुच्छेद 213 (2) द्वारा सृजित काल्पनिक कथाएं इसके उपबंधों के अधीन हैं जो इस प्रकार हैंःपहला, किसी अध्यादेश की अवधि विधायिका के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति तक सीमित है, दूसरा, किसी अध्यादेश की अवधि को विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह से भी कम अवधि तक कम किया जा सकता है, अध्यादेश को अस्वीकृत करने वाला प्रस्ताव पारित होने पर और तीसरा, संवैधानिक आवश्यकता यह है कि अध्यादेश को विधायिका के समक्ष रखा जाए।राष्ट्रपति या

राज्यपालों द्वारा बनाए गए अध्यादेशों पर विधायी नियंत्रण अनुच्छेद 213 और 123 की योजना के केंद्र में है और संवैधानिक कल्पना जो किसी अध्यादेश को वही बल और प्रभाव प्रदान करती है जो विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून अनुच्छेद 213 के खंड 2 के उपखंड (क) और (ख) के अधीन है।"" "(क) और (ख) में निहित सूत्रीकरण से पहले" "" "लेकिन" "" "अभिव्यक्ति इंगित करती है कि संवैधानिक कल्पना उन शर्तों के अधीन है जो संवैधानिक उपबंध में विहित हैं।" ""

राष्ट्रपति की संतुष्टि

36 वह संवैधानिक शक्ति जो अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति को और अनुच्छेद 213 के अधीन राज्यपालों को अध्यादेश प्रख्यापित करने के लिए प्रदत्त की गई है, सशर्त है।इस शर्त के अलावा कि इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा हो, यह शक्ति राष्ट्रपति (अनुच्छेद 123 के तहत) या राज्यपाल (अनुच्छेद 213 के तहत) की संतुष्टि के अधीन है कि ऐसी परिस्थितियां मौजूद हैं जिनके कारण उनके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है।

37 आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय के ग्यारह न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग असाधारण परिस्थितियों में किया जा सकता है जिसमें तत्काल कानून के प्रख्यापन की मांग की जाती है।इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राष्ट्रपति द्वारा अवधारण को अंतिम घोषित नहीं किया गया था।न्यायालय के लिए बोलते हुए न्यायमूर्ति जे. सी. शाह ने इस प्रकार मत व्यक्त कियाः

23. ऐसे अध्यादेश को प्रख्यापित करने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रतीत होती है कि ऐसी परिस्थितियों में (क) जब संसद के दोनों सदन सत्र में न हों। (ख) इस आशय का उपबंध करना यह संसद की सक्षमता के भीतर है कि (ग) राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि परिस्थितियां मौजूद हैं जो इसे आवश्यक बनाती हैं उन्हें तत्काल कार्रवाई करने को कहा गया है।कि शक्ति का प्रयोग में

सख़्त शर्तों का पालन किया जाता है।संतुष्टि से संबंधित खंड संयुक्त हैःसंतुष्टि परिस्थितियों के अस्तित्व के साथ-साथ उन परिस्थितियों के कारण तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता से संबंधित है.राष्ट्रपति द्वारा परिस्थितियों के अस्तित्व और तत्काल कार्रवाई

करने की आवश्यकता, जिस पर संतुष्टि निर्भर करती है, की घोषणा नहीं की गई है, अंतिम है।

" (जोर दिया गया)

हालांकि, इस मुद्दे को अकादमिक बना दिया गया था क्योंकि अध्यादेश को एक विधायी अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था।संतुष्टि की औचित्य का अंतिम रूप से निर्णय नहीं किया गया था।

38 संविधान (अड़तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 को आंतरिक आपातकाल की अवधि के दौरान 1 अगस्त, 1975 को लागू किया गया था।इस संशोधन में अन्य बातों के अलावा, अनुच्छेद 123 और 213 में दो महत्वपूर्ण प्रावधान शामिल किए गए हैं, जिसके द्वारा राष्ट्रपति या, जैसा भी मामला हो, की संतुष्टि प्राप्त होती है

(ख) राज्यपाल को अंतिम और निश्चायक घोषित किया गया था और उसे किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में पूछताछ किए जाने से मुक्त रखा गया था।अनुच्छेद 123 के खंड 4 में निम्नानुसार उपबंध किया गया हैः

24....इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, - राष्ट्रपति की संतुष्टि का उल्लेख खंड (1) अंतिम और निश्चायक होगा और किसी भी अदालत में किसी भी आधार पर पूछताछ नहीं की जाएगी।(आई डी) पी.295)

इसी तरह के एक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 213 में खंड 4 को शामिल किया गया।इस संशोधन का प्रभाव यह था कि राष्ट्रपति या राज्यपाल को किसी न्यायालय द्वारा जांच किए जाने के बाद संतुष्टि से छूट प्रदान की जा सके।इस संशोधन को 44 वें संशोधन की धारा 16 द्वारा अभिव्यक्त रूप से हटा दिया गया था।

39 ए. के. रॉय बनाम भारत संघ 38 वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष इस हटाए जाने (खंड 4 के प्रभाव का आग्रह इस सकारात्मक संकेतक के रूप में किया गया था कि तत्काल कार्रवाई को आवश्यक बनाने वाला अध्यादेश जारी करने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि अब अंतिम और निर्णायक नहीं थी और यह न्यायिक जांच के लिए खुला होना चाहिए।समर्थन में, माधव राव बनाम भारत संघ 39 में न्यायमूर्ति शाह और

न्यायमूर्ति हेगड़े की निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा किया गया था।न्यायमूर्ति शाह ने इस प्रकार मत व्यक्त किया:

> 25....लोकतांत्रिक व्यवस्था में संवैधानिक व्यवस्था राजनीति किसी के अस्तित्व की कल्पना नहीं करती है कार्य जो नागरिकों को निर्दिष्ट किया जा सकता है राजनीतिक और आदेशों के रूप में, जिनका प्रयोग किया गया पहले उनकी वैधता के लिए परीक्षण नहीं किया जा सकता है विधिपूर्ण रूप से गठित न्यायालय.(आईडी पृ. 296)

न्यायमूर्ति हेगड़े ने इस प्रकार मत व्यक्त किया:

25....इसके तहत कोई राजनीतिक शक्ति नहीं है संबंधों के मामले में हमारा संविधान

> कार्यपालिका और नागरिकों के बीच कार्यपालिका और नागरिक के संबंध में संविधान में कोई राजनितिक शक्ति के विषय में कोई उललेख नहीं है ।(आई० डी० पृष्ठ 296).

ए. के. रॉय चन्द्रचूड़, मुख्य न्यायाधीश ने संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए कहा कि इस मुद्दे को राजनीतिक सवाल के रूप में नहीं माना जा सकता कि क्या अनुच्छेद 213 के तहत शक्ति के उपयोग की शर्तों को पूरा किया गया है:

> 26. हम इस विवाद की शक्ति को देखते हैं कि प्रश्न यह है कि क्या अभ्यास की पूर्व-शर्तें अनुच्छेद 123 द्वारा प्रदत्त शक्ति का समाधान हो जाता है। इसे पूरी तरह से राजनीतिक सवाल नहीं माना जा सकता। राजनीतिक सवाल का सिद्धांत विकसित हुआ संयुक्त राज्य अमेरिका में इसके आधार पर संविधान जिसने संविधान की एक प्रणाली को अपनाया है हमारी शक्तियों के विपरीत शक्तियों का कठोर अलगाव।(पृ. 296)

संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि पहले के मामले राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ का निर्णय ऐसे समय में किया गया था जब अनुच्छेद 123 के खंड 1 के तहत राष्ट्रपति की संतुष्टि को 38 वें संशोधन द्वारा अंतिम रूप दिया गया था।इस न्यायालय ने कहा कि यह तर्क दिया जा सकता है कि 44 वें संशोधन के बाद राष्ट्रपति की संतुष्टि की न्यायिक समीक्षा को पूरी तरह से बाहर नहीं रखा गया है।संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ की टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

----------27. राजस्थान मामला (भारत का विधि आयोग)

राजस्थान बनाम भारत संघ, (1977) 3 एससीसी 592:(1978) 1 एस. सी. आर. 1) को प्रायः इस प्रतिपादना के प्राधिकार के रूप में उद्धृत किया जाता है कि न्यायालयों को प्रवेश नहीं करना चाहिए।

40 (1978) 1 एससीआर 1

"" "राजनीतिक घमासान" ""यह ध्यान में रखना होगा कि जब उस मामले का निर्णय किया गया था, तो अनुच्छेद 356 में खंड (5) शामिल था, जिसे 38 वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया था, जिसके द्वारा खंड (1) में उल्लिखित राष्ट्रपति की संतुष्टि को अंतिम और निर्णायक बनाया गया था और किसी भी आधार पर किसी भी अदालत में उस संतुष्टि पर सवाल नहीं उठाया जा सकता था।खंड (5) को 44 वें संशोधन द्वारा हटा दिया गया है और इसलिए, राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ, (1977) 3 एससीसी 592:(1978) 1 एस. सी. आर. 1] उस खंड के आधार पर

अब भी अच्छी स्थिति में नहीं है।यह तर्क दिया जा सकता है कि 44 वां संविधान संशोधन अधिनियम इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि राष्ट्रपति से संबंधित प्रश्न के संबंध में न्यायिक समीक्षा को पूरी तरह से बाहर नहीं रखा गया है

संतुष्टि।(आई डी पृष्ठ 297 पर) (जोर दिया गया)

तथापि, अंतिम विश्लेषण में न्यायालय ने अनुच्छेद 123 (1) के अधीन राष्ट्रपति की संतुष्टि के औचित्य के प्रश्न पर विचार करने से इंकार कर दिया क्योंकि उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर न्यायालय के लिए किसी न किसी रूप में किसी निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं था।

44 वें संविधान संसोधन में न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने नौ न्यायधिशों की खंडपीठ एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ के निर्णय में

“379...तथापि, हम इस बात से सहमत हैं कि इसे हटाया जाना चाहिए। खंड निश्चित रूप से इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि न्यायिक पुनर्विलोकन के मार्ग में निर्मित अभिव्यक्त अवरोध इसे सचेत रूप से हटा दिया गया है और (ख) जानबूझकर संसद।ए. के. रॉय बनाम भारत संघ [(1982)] 1 एससीसी 271:1982 एससीसी (क्रिमि) 152:(1982) 2 एस. सी.

272) है।शक्ति संबंधी खंड द्वारा डाली गई बादलों की न्यायिक समीक्षा हटा ली गई है।(पृष्ठ 270 पर) 41 (1994) 3 एससीसी 1

जैसा कि उपर्युक्त उद्धरण से संकेत मिलता है, ए. के. रॉय की टिप्पणियों ने बोम्मई में एक विशिष्ट संदर्भ पाया।न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के प्रावधानों का अर्थ लगाते हुए कहा कि खंड 5, जो उद्घोषणा की वैधता की जांच करने के लिए न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित करता है, को संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा हटा दिया गया था। न्यायालय के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए, जब अनुच्छेद 356 के तहत एक उद्घोषणा पर सवाल उठाया जाता है, न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने कहा किः

373. जब कभी अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा प्रश्न किया जाता है, न्यायालय निःसंदेह निम्नलिखित से प्रारंभ करेगा अनुमान है कि यह वैध रूप से जारी किया गया था, लेकिन यह नहीं होगा और यह हस्तक्षेप करने के लिए हिचकिचाना नहीं चाहिए अगर उद्घोषणा की अविधिमान्यता या असंवैधानिकता स्पष्ट कर दिया गया है।ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने से इनकार मामला ड्यूटी कास्ट के परित्याग के बराबर होगा न्यायालय-उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों पर संविधान द्वारा।(पृ.(266-267)

न्यायिक समीक्षा का मानक निम्नलिखित टिप्पणियों में तैयार किया गया थाः

374. सामग्री की सच्चाई या शुद्धता अदालत न तो इस पर सवाल उठा सकती है और न ही आगे बढ़ सकती है सामग्री की पर्याप्तता।यह भी नहीं होगा (ख) अपनी राय को राष्ट्रपति की राय के स्थान पर रख सकेगी।यहां तक कि यदि कुछ सामग्री जिस पर कार्रवाई की गई है अप्रासंगिक पाया गया है, अदालत अभी भी नहीं होगा जब तक कुछ प्रासंगिक सामग्री है, हस्तक्षेप करें कार्रवाई को बनाए रखना।दुर्भावना की जड़ (ख) अन्य बातों के साथ-साथ ऐसी स्थितियों में, जहां उद्घोषणा को दुरुपयोग का स्पष्ट मामला पाया गया है या जिसे कभी-कभी धोखाधड़ी कहा जाता है शक्ति-ऐसे मामले जहां इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है तिर्यक लक्ष्य प्राप्त करना।(पृष्ठ 268 पर)

40 बोम्मई में न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी के निर्णय से उभरे सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह अभिनिर्धारित करने का कारण है कि अनुच्छेद 123 (1) के तहत राष्ट्रपति या अनुच्छेद 213 (1) के तहत राज्यपाल की संतुष्टि इससे अछूती नहीं है।

न्यायिक समीक्षा.अध्यादेशों को प्रख्यापित करने की शक्ति एक पूर्ण समर्पण नहीं है, बल्कि इस संतुष्टि पर सशर्त है कि परिस्थितियां मौजूद हैं और तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक है। निःसंदेह, जैसा कि इस न्यायालय ने इंद्र साहनी बनाम भारत संघ वाले मामले में अभिनिर्धारित किया था, न्यायिक संवीक्षा की सीमा और व्याप्ति विषय वस्तु की प्रकृति, प्रभावित अधिकार की प्रकृति, अंतर्वलित विधिक और संवैधानिक उपबंधों के स्वरूप और ऐसे कारकों पर निर्भर करती है।चूंकि संतुष्टि तक पहुंचने का कर्तव्य राष्ट्रपति और राज्यपालों पर निर्भर करता है (हालांकि यह मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर प्रयोग किया जा सकता है), इसलिए जब अनुच्छेद 123 या अनुच्छेद 213 के तहत संतुष्टि को चुनौती दी जाती है तो न्यायालय को सतर्कता से कार्य करना चाहिए।न्यायालय राष्ट्रपति या राज्यपाल के समक्ष सामग्री की पर्याप्तता या संपूर्णता की जांच नहीं करेगा।यदि कोई ऐसी सामग्री है जो उनकी संतुष्टि के लिए प्रासंगिक है तो अदालत हस्तक्षेप नहीं करेगी।शक्ति के साथ धोखाधड़ी या शक्ति के दुरुपयोग के मामले में अदालत का हस्तक्षेप हो सकता है।इसमें अनिवार्य रूप से ऐसी स्थिति शामिल है जहां किसी अप्रत्यक्ष प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए शक्ति का प्रयोग किया गया है।न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय को अपनी अंतर्निहित सीमाओं के साथ-साथ कार्यपालिका के प्रमुख को सौंपे गए अधिकारों को भी ध्यान में रखना चाहिए, जो निर्वाचित विधानमंडल के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी के कारण मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करता है।दूसरे शब्दों में, यह केवल वहां है जहां न्यायालय यह पाता है कि शक्ति का प्रयोग बाहरी आधारों पर आधारित है और किसी भी तरह से संतुष्ट नहीं है कि किसी दुर्लभ मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है।तथापि, न्यायिक पुनर्विलोकन से पूर्ण उन्मुक्ति का प्रथम सिद्धांत के रूप में या संवैधानिक इतिहास के आधार पर समर्थन नहीं किया जा सकता।

जे० पुनर्उख्यापण

41 डी. सी. वाधवा के निर्णय ने अपने औचित्य, शीर्षक और उस कार्य के विषय के रूप में अपनाया जिससे यह मामला उत्पन्न हुआ।इस खंड में, हम यह मानने के आधार को संबोधित करते हैं कि किसी संवैधानिक पदाधिकारी के किसी कार्य को संविधान के साथ धोखाधड़ी माना जाता है।किसी कार्य की पुनरावृत्ति, जो आरंभ में अनुमत है, संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन क्यों है?डी सी वाधवा के फैसले को दरकिनार करते हुए, हम पहले खंड में पहले

सिद्धांत पर फिर से लागू करने के मुद्दे पर विचार करते हैं।दूसरे खंड में, हम संविधान पीठ के निर्णय का विश्लेषण करते हैं और उसके तर्क और सीमाओं का पता लगाते हैं।

जे. 1 संवैधानिक सिद्धांत

42 राष्ट्रपति और राज्यपालों को अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान करने का औचित्य यह है कि विधि, विशेष रूप से शासन की सुसंहत स्थिति को स्वीकार नहीं करेगी। विधायिका हमेशा सत्र में नहीं होती।इसे समझने में समय लगता है।इस बीच, अप्रत्याशित घटनाएं उत्पन्न हो सकती हैं, जिनके विधायी निवारण की आवश्यकता है।अध्यादेश तभी जारी किया जा सकता है जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा हो।लेकिन विधायिका की बैठक छह महीने के अंतराल पर बुलाई जानी चाहिए।एक अध्यादेश का जीवन समय में प्रतिबंधित होता है:विधायिका के पुनः समवेत होने के छः सप्ताह बाद यह कार्य करना बंद कर देता है।इस अवधि के भीतर भी विधायिका द्वारा अध्यादेश की अनुपस्थिति में लागू अध्यादेश को अस्वीकृत करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया जा सकता है।ऐसी स्थिति में मंत्रिमंडल की सहायता और सलाह पर राज्यपाल द्वारा बनाया गया अध्यादेश काम करना बंद कर देता है।
ए. का संवैधानिक सम्मान

अध्यादेश बनाने की शक्ति संसद और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित निकायों के माध्यम से होने वाले सामान्य विधान के विचलन में है।संविधान द्वारा इस तरह के विचलन की अनुमति दी गई है, ताकि राष्ट्रपति और राज्यपाल ऐसे अध्यादेश लागू कर सकें, जो केवल उन परिस्थितियों के अस्तित्व के कारण कानून का प्रभाव रखते हैं, जो कानून के निर्माण में कोई देरी नहीं कर सकते।संसदीय लोकतंत्र में सरकार सामूहिक रूप से निर्वाचित विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है।सरकार का अस्तित्व विधायिका के निरंतर विश्वास पर निर्भर करता है।अध्यादेश बनाने की शक्ति कार्यपालिका पर विधायिका के नियंत्रण के अधीन है। विधायिका के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही उस तरीके से दर्शाई जाती है जिसमें संविधान ने अध्यादेश बनाने की शक्ति को विधायी प्राधिकार के अधीन किया है।यह संविधान अनुच्छेद 213 की अपेक्षाओं को पूरा करता है।पहली आवश्यकता उस शर्त को परिभाषित करती है जिसके अधीन कोई अध्यादेश बनाया जा सकता है।आवश्यकताओं का दूसरा सेट यह अनिवार्य बनाता है कि एक अध्यादेश को विधायिका के सदन के समक्ष रखा जाना चाहिए। तीसरी आवश्यकता अध्यादेश की अवधि को निर्दिष्ट करती है और विधायिका को विधायी अस्वीकृति तैयार करने की अवधि को कम करने की शक्ति प्रदान करती है।एक बार किसी

अध्यादेश के प्रख्यापन के बाद विधायिका के फिर से जुड़ने के बाद संविधान में यह पूर्वानुमान लगाया गया है कि कानून बनाने की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए विधायिका को उन प्रावधानों की आवश्यकता का निर्धारण करना है जिन्हें अध्यादेश में शामिल किया गया है और उन्हें कानून के रूप में लागू करने की आवश्यकता है।एक बार विधायिका के सत्र में बुलाए जाने के बाद, अध्यादेश की आवश्यकता को अनिवार्य रूप से समाप्त कर दिया जाता है क्योंकि यह

विधायी निकाय को अपने सामूहिक विवेक से यह निर्णय करना होगा कि क्या कोई अध्यादेश बनाया जाना चाहिए था और यदि ऐसा है तो क्या कानून बनाया जाना चाहिए।43 किसी कानून को अधिनियमित करने की आवश्यकता पर चर्चा, बहस और अवधारण करने के लिए विधायिका के पुनः समवेत होने के पश्चात् अध्यादेश को जारी रखने के लिए संविधान द्वारा युक्तियुक्त अवधि की परिकल्पना की गई है।किसी अध्यादेश को फिर से लागू करना, यानी पहले के अध्यादेश का जीवन समाप्त होने के बाद एक अध्यादेश को फिर से लागू करना, मूल रूप से अनुच्छेद 123 और 213 की योजना के विपरीत है।पुनः प्रख्यापन यह अभिनिर्धारित करता है कि विधायिका के मध्यवर्ती सत्र के बावजूद, अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति का एक नया प्रयोग इस तथ्य के बावजूद किया जा रहा है कि विधायिका ने, जो पहले प्रख्यापित अध्यादेश के अस्तित्व में थी, अपने उपबंधों को नियमित रूप से अधिनियमित कानून में परिवर्तित नहीं किया है।क्या होगा यदि ऐसी असाधारण स्थिति हो जिसमें विधायिका का सदन विधायी कार्य के दबाव या कारणों से अध्यादेश की तर्ज पर कोई कानून बनाने में असमर्थ हो?क्या किसी विधायी सत्र के हस्तक्षेप के बाद तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता पर राज्यपाल की संतुष्टि फिर से लागू की जाएगी?

44 अध्यादेशों का पुनः प्रख्यापन संवैधानिक रूप से अननुज्ञेय है क्योंकि यह विधायी निकाय तक पहुंचने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है जो संसदीय लोकतंत्र में कानून बनाने के प्राधिकार का प्राथमिक स्रोत है।राष्ट्रपति और राज्यपालों को अध्यादेश बनाने की सीमित शक्ति प्रदान की गई है।प्रख्यापन का खतरा

संविधान के तहत प्राथमिक कानून देने वालों के रूप में गठित संसद और राज्य विधानसभाओं की संप्रभुता को इससे खतरा है।खुली विधायी बहस और चर्चा कानून बनाने के माध्यम से पारदर्शी और जवाबदेह शासन से अध्यादेश बनाने की गोपनीयता को अलग करती है।

जे 2 डी सी वाधवा

45 डी. सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य वाले मामले में संविधान पीठ के निर्णय ने अभिनिर्धारित किया कि बिहार राज्य द्वारा अध्यादेशों को पुनः प्रख्यापित करना संविधान के साथ कपट है।संविधान पीठ ने संविधान की योजना का उल्लेख करते हुए कहा किः

6...संविधान के तहत प्राथमिक विधि बनाने वाला प्राधिकारी विधायिका है, कार्यपालिका नहीं लेकिन यह संभव है कि जब विधायिका सत्र में नहीं है सत्र के दौरान ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिनके अनुसार आवश्यक, तत्काल कार्रवाई करने के लिए और ऐसी स्थिति में (ख) ऐसा मामला जिसमें लोकहित प्रभावित न हो विधायिका के कानून बनाने में असमर्थता का कारण आपात स्थिति से निपटने के लिए राज्यपाल में (ख) अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति निहित है। लेकिन राज्यपाल द्वारा जारी प्रत्येक अध्यादेश इसे विधायिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए और यह (ख) छह सप्ताह की समाप्ति पर प्रचालन बंद हो जाएगा। विधायिका के पुनः समवेत होने से या यदि पहले उस अवधि की समाप्ति का संकल्प इसे अस्वीकृत करने वाला विधेयक विधायिका द्वारा पारित किया जाता है। विधानसभा और विधान परिषद द्वारा सहमत, यदि कोई हो।इस उपबंध का उद्देश्य यह है कि जब से जारी करने के लिए राज्यपाल को प्रदत्त शक्ति अध्यादेश एक आपात शक्ति है जिसका प्रयोग किया जा सकता है जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा हो, तो एक अध्यादेश (क) राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित

ऐसी स्थिति जिसमें तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता होती है और जिसके लिए विधायिका के फिर से जुड़ने का इंतजार नहीं किया जा सकता, उसका सीमित जीवन ही होना चाहिए।''.

अध्यादेश जारी करने की शक्ति अनिवार्य रूप से एक असाधारण स्थिति का सामना करने के लिए एक शक्ति है और इसे राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।यह सभी लोकतांत्रिक मानदंडों के विपरीत है कि कार्यपालिका को कानून बनाने की शक्ति होनी चाहिए, लेकिन किसी आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए, यह शक्ति राज्यपाल को प्रदान की जाती है और राज्यपाल द्वारा इस शक्ति का प्रयोग करते हुए एक अध्यादेश जारी किया जाता है, इसलिए आवश्यकता के अनुसार समय की सीमा में सीमित किया जाना चाहिए।इसलिए यह प्रावधान किया गया है कि अध्यादेश विधायिका के

गठन की तारीख से छह सप्ताह की समाप्ति पर लागू नहीं रहेगा।संविधान निर्माताओं को उम्मीद थी कि यदि अध्यादेश के प्रावधानों को जारी रखना है, तो यह समय विधायिका के लिए आवश्यक अधिनियम पारित करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए।कार्यपालिका विधायिका के पास जाए बिना अध्यादेश के प्रावधानों को जारी नहीं रख सकती।संविधान द्वारा कानून बनाने का कार्य जनता के प्रतिनिधियों से बनी विधायिका को सौंपा गया है और यदि कार्यपालिका को विधायिका की आवाज को सुने बिना अध्यादेश के प्रावधानों को जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो यह विधायिका के कानून बनाने के कार्य की कार्यपालिका द्वारा समर्थन से कम नहीं होगा।कार्यपालिका अपने द्वारा प्रयोग की जाने वाली आपात शक्ति का आश्रय केवल तभी नहीं ले सकती जब विधायिका सत्र में न हो, वह विधायिका के विधि निर्माण कार्य को अपने हाथ में ले सकती है।यह हमारी संवैधानिक योजना के मूल में निहित लोकतांत्रिक प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से नष्ट करना होगा, क्योंकि तब लोग विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा नहीं, बल्कि कार्यपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा शासित होंगे। (पृष्ठ 392 पर)

अध्यादेशों को फिर से लागू करना शक्ति का एक रंगीन प्रयोग माना गया।संविधान पीठ ने कहा कि बिहार राज्य में कार्यपालिका ने कानून बनाने में विधायिका की भूमिका लगभग अपने हाथ में ले ली थी, न कि सीमित अवधि के लिए, बल्कि संवैधानिक सीमाओं की अवहेलना करते हुए वर्षों तक।इस न्यायालय ने चेतावनी दी कि देश में एक अध्यादेश राज नहीं होना चाहिएः

6. जब संवैधानिक प्रावधान यह निर्धारित करता है कि एक आपात स्थिति को पूरा करने के लिए राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश विधायिका और सरकार की पुनः बैठक से छः सप्ताह की समाप्ति पर संचालन में समाप्त हो जाएगा, यदि यह अध्यादेश के प्रावधानों को चाहती है विधायिका के समक्ष जाना पड़ता है, जिसे कानून बनाने का कार्य सौंपा गया । संवैधानिक प्रकरण है, यह निश्चित रूप से सरकार के लिए विधायिका की उपेक्षा करने और पुनः प्रख्यापित करने के लिए शक्ति का एक सहज अभ्यास होगा । अध्यादेश और इस प्रकार कार्यपालिका द्वारा बनाए गए अध्यादेश के माध्यम से नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता को विनियमित करना जारी रखता है"(पृ. 394)

डीसी वाधवा मामले में फैसले की सीमा यह है कि संवैधानिक सिद्धांत को स्पष्ट करने के बाद, संविधान पीठ केवल इस उम्मीद और विश्वास के साथ समाप्त हुई कि फिर से जारी अध्यादेशों के माध्यम से कानून बनाना मानक नहीं बन जाएगा।इस मामले में पुनः प्रख्यापित अध्यादेशों

के उत्तराधिकार द्वारा उस विश्वास को झूठा साबित किया गया है।अंतिम निर्देश इंटरमीडिएट शिक्षा पर एक अध्यादेश को अलग करने के लिए था, जो अभी भी क्षेत्र में था।डीसी वाधवा ने किसी अध्यादेश के तहत की गई कार्रवाई की कानूनी स्थिति के बारे में अपने आप को संबोधित नहीं किया, जो अपने कार्यकाल की समाप्ति पर या अस्वीकृत होने पर समाप्त हो गया है।क्या कार्रवाई शुरू की गई है?

किसी अध्यादेश के अधीन किसी ऐसे अध्यादेश के अन्त तक जीवित रहना, जिसे विधायिका के अधिनियम के रूप में अंगीकार नहीं किया गया है?यही वह मुद्दा है जिसकी ओर हम अब मुड़ रहे हैं।

के लाइफ बियोंड डेथःस्थायी प्रभावों की पहेली

46 अनुच्छेद 213 (2) (क) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर अध्यादेश का प्रवर्तन समाप्त हो जाएगा। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी इस अभिव्यक्ति को परिभाषित करती हैः"" "अंत तक आने के लिए" "" "रुकना, देना, बंद करना, बंद करना।" ""पी. रामनाथ अय्यर के 'द मेजर लॉ लेक्सिकन' में इस अभिव्यक्ति को परिभाषित किया गया है।

को समाप्त कर दिया।न्यायमूर्ति सी. के. ठक्कर के एनसाइक्लोपीडिया लॉ लेक्सिकन 46 में परिभाषित

"" "समाप्त" "शब्द का अर्थ हैः""" "रूकना, समाप्त करना या बंद करना।"ब्लैक लॉ में इस अभिव्यक्ति को इसी तरह के शब्दों में परिभाषित किया गया है

शब्दकोश

47 आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के एक निर्णय में

महानत नारायण देसजीवरु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि

योजना और सनद अब लागू नहीं थे और यदि कोई हो तो उससे प्राप्त अधिकार समाप्त कर दिए गए थे।उस अभिव्यक्ति में निलंबन की किसी भी धारणा को लाने की कोई गुंजाइश नहीं थी।एक बार के लिए सभी 49 के लिए बंद कर दिया गया।

44 द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी (II संस्करण):क्लेयरेंडन प्रेस, पृ.1014 45 द मेजर लॉ लेक्सिकन (IV संस्करण पृष्ठ 1053)

46 अशोक लॉ हाउस, नई दिल्ली (भारत) पृ.879 47 XthEdn. पृ. 268

48 एयर (1959) एपी 471

49 ईद, पैरा 28, पृ.474

48 अनुच्छेद 213 (2) (क) में "प्रवर्तन में नहीं" अभिव्यक्ति दो स्थितियों में आकर्षित होती है।पहला, जहां विधायिका के पुनः समवेत होने के बाद से छह सप्ताह की अवधि समाप्त हो गई है।दूसरी स्थिति यह है कि विधायिका ने अध्यादेश को अस्वीकृत करते हुए एक प्रस्ताव पारित कर दिया है।उपखण्ड (क) और (ख) में यह अनुध्यात किया गया है कि राज्यपाल द्वारा किसी भी समय अध्यादेश वापस लिया जा सकता है।इस अध्यादेश को वापस लेने के बाद इसका संचालन भी बंद हो जाएगा।

49 'अस्वीकृति' अभिव्यक्ति को पी. रामनाथ अय्यर के लॉ लेक्सिकन (उपर्युक्त) में इस अर्थ में परिभाषित किया गया है कि कभी-कभी इसका प्रयोग अस्वीकृति की भावना के परिणामस्वरूप औपचारिक रूप से मंजूरी देने या रद्द करने से इनकार करने के लिए किया जाता है।ब्लैक का लॉ डिक्शनरी अस्वीकृति को किसी के प्रति नकारात्मक निर्णय या दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित करता है।

50 न्यायालय के समक्ष मुद्दा एक अध्यादेश का परिणाम है जो छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर या, उस अवधि के भीतर, विधायिका द्वारा अस्वीकृति पर समाप्त हो जाता है। संवैधानिक प्रावधान में कहा गया है कि दोनों स्थितियों में अध्यादेश लागू नहीं होगा।जहां कोई अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहा है वहां क्या इसका परिणाम उस राज्य के पुनरुद्धार के रूप में सामने आएगा जो अध्यादेश प्रख्यापित किए जाने से पूर्व विद्यमान था?क्या अध्यादेश द्वारा सृजित कानूनी प्रभावों को किसी अध्यादेश के निष्प्रभावी होने या अस्वीकृति का प्रस्ताव पारित होने पर कानून के रूप में समाप्त कर दिया जाएगा?दो ऐसे निर्माण हैं जिनका विश्लेषण करने की आवश्यकता है।इनमें से प्रत्येक दो विरोधी छोर पर स्थित है।इसके एक छोर पर

स्पेक्ट्रम का मतलब यह है कि एक बार विधायिका द्वारा एक प्रस्ताव द्वारा अपनी अस्वीकृति व्यक्त करने के बाद, अध्यादेश द्वारा लाई गई स्थिति भंग हो जाती है और अध्यादेश की पूर्व

संध्या पर जो स्थिति थी, वह फिर से बहाल हो जाती है।इस दृष्टि से, अस्वीकृति इस बीच जो कुछ भी घटित हुआ था, उसके प्रभाव को समाप्त करने के बराबर है।स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर यह विचार है कि किसी अध्यादेश के प्रख्यापन पर विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून की शक्ति और प्रभाव होता है।अतः इसका कार्यकाल समाप्त होने (छह सप्ताह की समाप्ति या अस्वीकृति का प्रस्ताव पारित होने पर) का अर्थ है कि अध्यादेश उस तारीख से लागू नहीं होगा।जब तक अध्यादेश का अमल बंद नहीं हो जाता, तब तक यह कानून के दायरे में बना रहता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी अध्यादेश या उसके स्थायी स्वरूप के परिणामों का असर अध्यादेश के जीवनकाल से परे भी बना रह सकता है।वैकल्पिक रूप से, जहां अध्यादेश द्वारा बनाए गए कानूनी प्राधिकार के अनुसरण में किसी स्थिति को अपरिवर्तनीय रूप से बदल दिया गया है, वहां स्थिति को पुनर्जीवित करने के लिए घड़ी को वापस नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह अध्यादेश के लागू होने से पहले थी।

51 पहले सिद्धांत के रूप में स्थिति की जांच करने से पहले, इस न्यायालय से निकलने वाले पूर्व की जांच करना उचित होगा।पंजाब राज्य बनाम मोहर सिंह वाले मामले में पूर्वी पंजाब के राज्यपाल द्वारा भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 88 के तहत पूर्वी पंजाब के शरणार्थियों के भूमि दावों के पंजीकरण के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया था।प्रत्यर्थी ने, जो पश्चिमी पाकिस्तान से एक शरणार्थी होने का दावा करता है, अध्यादेश के तहत एक दावा दायर किया.अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया और पूर्व द्वारा एक अधिनियम पारित किया गया

पंजाब विधानसभा निरस्त अध्यादेश के सभी प्रावधानों को फिर से लागू कर रही है।प्रत्यर्थी पर अधिनियम के तहत इस आधार पर मुकदमा चलाया गया कि उसका दावा झूठा पाया गया और वास्तव में पश्चिम पाकिस्तान में उसकी कोई जमीन नहीं थी।प्रतिवादी को अधिनियम के तहत एक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और कारावास की सजा सुनाई गई।जिला मजिस्ट्रेट ने सजा को अपर्याप्त मानते हुए मामले को उच्च न्यायालय को भेज दिया।प्रत्यर्थी ने इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि अधिनियम के अस्तित्व में आने से पहले अध्यादेश के खिलाफ अपराध किया गया था और अध्यादेश के समाप्त होने के बाद लंबे समय तक अभियोजन शुरू किया गया था.इस दलील को उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने स्वीकार करते हुए दोषसिद्धि और दंड को निरस्त कर दिया।उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 केवल तभी लागू होती है जब किसी अधिनियम को

सरल रूप से निरस्त किया जाता है, किंतु तब नहीं जब निरसन के बाद पुनः अधिनियमित किया जाता है।यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निरसन अधिनियम में यह उपबंध नहीं किया गया था कि ऐसा कोई अपराध जो उस समय किया गया था जब अध्यादेश प्रवृत्त था, उसके निरसन के पश्चात् दंडित किया जा सकता था।अपील में, इस न्यायालय ने तीन न्यायाधीशों के एक निर्णय में कहा कि प्रत्यर्थी के खिलाफ अभियोजन अध्यादेश के तहत नहीं बल्कि अधिनियम के प्रावधानों के तहत शुरू किया गया था।अदालत ने कहा कि किसी भी व्यक्ति को उस कानून के तहत न तो मुकदमा चलाया जा सकता है और न ही दंडित किया जा सकता है जो किसी अपराध के होने के बाद अस्तित्व में आया है।लेकिन मुद्दा यह था कि क्या अध्यादेश के निरस्त होने के बाद प्रतिवादी पर मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे दंडित किया जा सकता है।इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त कियाः

> 8.जब भी किसी कानून का निरसन होता है, धारा 6 में अधिकथित परिणाम सामान्य खंड अधिनियम का अनुसरण करेगा जब तक कि, इस धारा में स्वयं कहा गया है कि एक अलग आशय प्रकट होता है।इसके साधारण निरसन का मामला विरले ही है। किसी विपरीत राय की अभिव्यक्ति के लिए गुंजाइश होगी।लेकिन जब निरसन के पश्चात् एक ही विषय जो हमें निश्चित रूप से नए अधिनियम के प्रावधानों को देखें, लेकिन केवल यह अवधारित करने का उद्देश्य कि क्या वे इंगित करते हैं अलग मंशा है।जांच की लाइन यह नहीं होगी कि क्या नया अधिनियम स्पष्ट रूप से पुराने को जीवित रखता है? अधिकार और देनदारियां लेकिन क्या यह प्रकट करता है उन्हें नष्ट करने का इरादा है।इसलिए हम ऐसा नहीं कर सकते (ख) इस व्यापक प्रस्ताव की सदस्यता लेना कि धारा 6 सामान्य खंड अधिनियम को तब खारिज कर दिया जाता है जब (ख) नए अधिनियम के पश्चात् किसी अधिनियमिति का निरसन कानून बनाना।

प्रत्यर्थी द्वारा किए गए अपराध में अध्यादेश के प्रावधानों के तहत झूठा दावा दायर करना शामिल था.यह दावा अध्यादेश के तहत दायर किया गया था और इस तरह के दावे के संबंध में कोई भी गलत जानकारी अध्यादेश के तहत दंडनीय अपराध थी।अधिनियम की धारा 4 के परंतुक के तहत, अध्यादेश के तहत दायर किए गए दावे को अधिनियम के तहत दायर किए गए दावे के रूप में माना जाएगा, जिसके साथ सभी परिणाम जुड़े होंगे।एक शरणार्थी जिसने पहले अध्यादेश के तहत एक दावा प्रस्तुत किया था, उसे उसी भूमि के संबंध में एक और दावा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी।अतः, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि

अधिनियम में अधिकथित रूप में दावा दाखिल करने से जुड़ी घटनाओं का अनिवार्य रूप से अनुसरण किया जाना चाहिए।यदि दावेदार द्वारा दी गई जानकारी गलत थी तो उसे अधिनियम के प्रावधानों के तहत दंडित किया जा सकता था।

निर्णय

9....----------यदि हमें यह अभिनिर्धारित करना है कि दंडात्मक प्रावधान

अधिनियम में निहित को आकर्षित नहीं किया जा सकता है

अध्यादेश के तहत दायर एक दावा, परिणाम होगा

असंगत हो और यहां तक कि अगर के बल पर एक

एक शरणार्थी एक झूठा दावा करने में सफल रहा है

उसके पक्ष में आवंटन नहीं किया जा सकता, ऐसा आवंटन

हम समझते हैं कि अधिनियम की धारा 8 के तहत रद्द कर दिया गया है

धारा 47 और 8 के प्रावधान इसे बनाते हैं

स्पष्ट है कि यह इरादा नहीं था

विधायिका के अधिकार और दायित्व

अध्यादेश के तहत दायर दावों की संख्या निम्नलिखित होगीः

अधिनियम के पारित होने पर समाप्त हो जाता है और यह

यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि वर्तमान मामला

जनरल की धारा 6 के संचालन को आकर्षित करना

खंड अधिनियम

दोषसिद्धि और दंडादेश को बहाल कर दिया गया और उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया गया (वृद्धि से भी इनकार कर दिया गया)।मोहर सिंह के फैसले में एक मामला शामिल था जहां एक अध्यादेश (जिसके तहत एक झूठा दावा दायर किया गया था) को विधायिका के एक अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया था।अधिनियम की व्याख्या इस अर्थ में की गई थी कि अध्यादेश के तहत दायर किए गए दावे को अधिनियम के तहत एक दावे के रूप में माना जाएगा।

52 मोहर सिंह वाले मामले में दिए गए निर्णय ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों को बनाए रखा।यह सिद्धांत केवल इसलिए लागू नहीं होता कि निरसन के बाद नया कानून बनाया जाता है।अदालत ने सांविधिक निर्माण के एक मामले के रूप में पाया कि एक अध्यादेश के तहत अधिकार और देनदारियां, जिसे निरस्त कर दिया गया था, एक नए कानून के अधिनियमन के साथ समाप्त नहीं हुई थीं।

53 साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 में निम्नलिखित उपबंध किया गया हैः

अध्याय 6।जहां यह अधिनियम या कोई केंद्रीय अधिनियम या

इसके प्रारंभ के पश्चात् बनाया गया विनियम

अधिनियम, अब तक बनाए गए किसी अधिनियमिति को निरसित करता है या

इसके बाद, तब तक, जब तक कि कोई अलग न हो

(ख) ऐसा प्रतीत होता है कि निरसन -

(ग) किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व को प्रभावित नहीं कर सकता है

किसी अधिनियमिति के अधीन अर्जित, प्रोद्भूत या उपगत

(ख) इस प्रकार निरसित किया गया है. या

(घ) किसी शास्ति, समपहरण या दंड पर प्रभाव डालेगा किए गए किसी अपराध की बाबत उपगत इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमिति के विरुद्ध, या

(ङ) किसी अन्वेषण, विधिक कार्यवाही को प्रभावित कर सकता है या

(क) ऐसे किसी अधिकार, विशेषाधिकार के संबंध में उपचार, बाध्यता, दायित्व, शास्ति, समपहरण या दंड जैसा कि ऊपर बताया गया है।

54 इसके निबंधनों में धारा 6 केवल निरसन को लागू होती है।किसी अध्यादेश का प्रभाव उस तारीख से छह सप्ताह के लिए समाप्त हो जाता है जिस तारीख को विधायिका फिर से एकत्र होती है (या इसे अस्वीकृत करने वाले विधायी प्रस्ताव के पारित होने पर)।विधायिका के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर कोई अध्यादेश निरस्त नहीं किया जाता है।किसी विधान को निरस्त करने का परिणाम विधायी निकाय के सकारात्मक या सकारात्मक कार्य के रूप में सामने आता है, जो उसके इस अवधारण पर आधारित होता है कि अब विधि की आवश्यकता नहीं है।निरसन कानून के माध्यम से किया जाता है।कोई अध्यादेश तब निष्प्रभावी हो जाता है जब वह विधिवत अधिनियमित विधान में परिवर्तित होकर विधायी अनुमोदन प्राप्त करने में विफल रहता है।सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 अधिकारों, विशेषाधिकारों और दायित्वों की रक्षा करती है और किसी अधिनियमिति के निरसन के मामलों में देनदारियां जारी रखती है।इस मुद्दे के बारे में कि क्या अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व और देनदारियां जो एक अध्यादेश के तहत उत्पन्न हुई हैं, जो काम करना बंद कर दिया है, का उत्तर धारा 6 द्वारा नहीं दिया गया है.

तो फिर वह कौन-सा स्पर्श-पत्थर है जिस पर इस प्रश्न का समाधान किया जाना चाहिए?

55 उड़ीसा राज्य बनाम भूपेन्द्र कुमार बोस वाले मामले में,

उच्च न्यायालय ने निर्वाचक नामावली के प्रकाशन में त्रुटि होने पर नगरपालिका को अपास्त कर दिया था।उड़ीसा के राज्यपाल ने एक अध्यादेश जारी किया जिसके द्वारा चुनावों को मतदाता सूची के साथ विधिमान्य किया गया।अध्यादेश के प्रावधानों के संदर्भ में कानून बनाने के लिए राज्य विधानसभा में एक विधेयक पेश किया गया था, लेकिन बहुमत से हार गया था। उड़ीसा राज्य ने उच्च न्यायालय के उस फैसले के खिलाफ इस न्यायालय में अपील दायर की जिसमें उसने अध्यादेश के भौतिक प्रावधानों को रद्द कर दिया था।इस न्यायालय के समक्ष, प्रत्यर्थी की ओर से यह आग्रह किया गया था कि अध्यादेश एक अस्थायी कानून की प्रकृति का था जो निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद व्यपगत होने के लिए बाध्य था.यह आग्रह किया गया था कि अध्यादेश के समाप्त हो जाने के बाद, जिन चुनावों को इसने ठीक कर दिया था, उनकी अमान्यता फिर से बहाल हो गई थी।यह उपर्युक्त पृष्ठभूमि में था कि इस न्यायालय

ने स्वयं इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या अध्यादेश की एक चूक ने इसके तहत चुनावों के सत्यापन को प्रभावित किया है.न्यायमूर्ति गजेंद्र गडकर ने संविधान पीठ की राय लिखते हुए कहा कि एक अस्थायी कानून के संबंध में सामान्य नियम यह है कि इसके विपरीत एक विशेष प्रावधान के अभाव में, इसके तहत किसी व्यक्ति के खिलाफ की गई कार्रवाई तब समाप्त हो जाएगी जब कानून समाप्त हो जाएगा।यही कारण है कि विधायिका सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के समान एक बचत प्रावधान अपनाती है।

52 (1962) अनुपूरक.(2) एससीआर 380

(क) अनुच्छेद 213 (2) (क) द्वारा अधिरोपित परिसीमा.संविधान पीठ ने भरोसा किया

तीन अंग्रेजी निर्णयःविक्स बनाम डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रॉसिक्यूशन इल्जाम वारेन बनाम विंडल इल्जाम और स्टीवेन्सन बनाम ओलिवर ।

इन अंग्रेजी निर्णयों को ध्यान में रखते हुए संविधान पीठ ने यह निर्णय दियाः

> 21. हमारी राय में, इसका क्या प्रभाव है किसी अस्थायी अधिनियम की समाप्ति अनिवार्य होगी। अधिकार या दायित्व की प्रकृति पर निर्भर करता है अस्थायी अधिनियम के प्रावधानों के परिणामस्वरूप उनके चरित्र के आधार पर क्या उनका यह अधिकार है और देयता स्थायी है या नहीं।

अस्थायी कानूनों पर अंग्रेजी निर्णयों में लागू किए गए 'स्थायी अधिकार' सिद्धांत को इस प्रकार एक अध्यादेश के प्रभाव का अर्थ लगाते हुए लाया गया था, जो काम करना बंद कर चुका है।संविधान पीठ के विचार में:

> 21...इसलिए, इस अधिनियम के प्रभाव पर विचार करते समय किसी अस्थाई कानून की समाप्ति पर, कोई भी कठोर नियम बनाने के लिए असुरक्षित।अगर सही है तो कानून द्वारा बनाया गया स्वरूप स्थायी है और व्यक्ति में निहित है कि अधिकार नहीं हो सकता है छीन लिया गया क्योंकि यह कानून जिसके द्वारा लिया गया था निर्मित की गई अवधि समाप्त हो चुकी है.यदि जुर्माना लगाया गया था (क) कानून के तहत और व्यक्ति, दंड का अधिरोपण जीवित रहेगा (क) कानून की समाप्ति.ऐसा प्रतीत होता है कि (क) मामले में वास्तविक कानूनी स्थिति. अदालत ने कहा कि नगरपालिका चुनावों की वैधता का उद्देश्य अस्थायी

नहीं था जो केवल अध्यादेश के जीवनकाल के दौरान चलेगा।इसके द्वारा बनाए गए अधिकारों को स्थायी और अंतिम माना गया था।

(क) अध्यादेश की समाप्ति.नतीजतन, अध्यादेश के व्यपगत होने से चुनाव की अमान्यता का पुनरुद्धार नहीं होगा, जिसे अध्यादेश ने मान्य किया था।

56 इस तर्क का अनुसरण टी. वेंकट रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य वाले मामले में संविधान पीठ द्वारा किया गया।उस मामले में, आंध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा एक अंशकालिक ग्राम अधिकारी के पदों को समाप्त करने के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया था।अध्यादेश का स्थान अधिनियम ने नहीं लिया, बल्कि चार अन्य अध्यादेशों ने ले लिया।उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था कि अध्यादेशों (विधायिका द्वारा अपने स्थान पर कोई अधिनियम पारित नहीं किया गया था) के व्यपगत हो जाने पर जिन पदों को समाप्त कर दिया गया था, वे पुनर्जीवित हो जाएंगे।संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया किः

14.....

123 या संविधान के अनुच्छेद 213 के तहत एक ही स्तर पर।जब संविधान कहता है कि अध्यादेश बनाने की शक्ति विधायी है शक्ति और अध्यादेश का बल एक ही होगा एक अधिनियम के रूप में, एक अध्यादेश को सभी को कवर किया जाना चाहिए विधायिका के अधिनियम की विशेषताएं इसकी सभी घटनाएं, उन्मुक्तियां और इसके अंतर्गत आने वाली सीमाएं संविधान.(पृष्ठ 211 पर)

इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी अध्यादेश को उसके प्रारंभ पर केवल इसलिए शून्य नहीं माना जाता है कि उसे विधायिका द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया हैः

19.....----------यह देखा गया है कि संविधान का अनुच्छेद 213

यह नहीं कहता कि अध्यादेश निम्नलिखित से शून्य होगाः

राज्य विधानमंडल पर प्रारंभ इसे नामंजूर करना।इसमें कहा गया है कि ऑपरेट करते हैं। इसका केवल यही अर्थ है कि इसे ऐसे माना जाना चाहिए जब तक यह प्रभावी नहीं हो जाता है के खंड (2) में वर्णित घटनाओं का होना अनुच्छेद 213.(पृष्ठ 214 पर)

अंशकालिक ग्राम अधिकारी के पदों को समाप्त करना एक स्थापित तथ्य माना गया था।यदि विधायिका अध्यादेश के प्रख्यापन से पहले विद्यमान पद को वापस लाना चाहती है तो न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य विधायिका द्वारा एक कानून अधिनियमित किया जाना होगाः

> "20. हालांकि, हमारा यहां यह कहने का मतलब नहीं है कि संसद या राज्य विधानमंडल को कार्य की उसी स्थिति को अस्तित्व में लाना, वे अध्यादेश पारित होने से पहले अस्तित्व में थे भले ही वे पूर्ण और बंद हो जाएं (ख) अध्यादेश के अधीन मामले.यह हो सकता है प्रचालन हेतु अभिव्यक्त कानून पारित करके प्राप्त किया गया पूर्वव्यापी प्रभाव, निश्चित रूप से, विषय अन्य संवैधानिक सीमाओं के बारे में.बस एक. (क) संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा अस्वीकृति तथापि, किसी अध्यादेश की समाप्ति को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है या लेन-देन को पूरा किया।(पृ. 216 पर)

57 भूपेंद्र कुमार बोस में निर्णय का मूल आधार यह है कि किसी अध्यादेश के प्रभावों का मूल्यांकन उसी मानदंड के आधार पर किया जा सकता है जो अस्थायी अधिनियमिति पर लागू होता है।किसी अध्यादेश को अस्थायी कानून के रूप में पेश करने में बुनियादी गलतफहमी है।अस्थाई अधिनियम एक कानून है जिसे विधायिका-संसद या राज्य विधायिका द्वारा अपनी पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किया जाता है।कानून बनाते समय विधायिका उस अवधि को परिभाषित करने की हकदार है जिसके दौरान कानून को लागू किया जाना है।विधायिका तय करती है कि कानून सीमित अवधि के लिए होगा या स्थायी होगा।इसलिए, यह पूरी तरह से विधायिका के दायरे और क्षमता के भीतर है जो अधिकारों या देनदारियों को प्रदान करने के लिए एक अस्थायी कानून बनाता है

105 पृष्ठ 106

कानून की अवधि के दौरान इसका कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी अस्तित्व में रहेगा। विधायिका, जिसके पास कार्यकाल द्वारा अप्रतिबंधित कानून बनाने की क्षमता है, एक अस्थायी कानून बनाने के लिए समान रूप से सक्षम है जिसमें वह विधायी आशय व्यक्त कर सकती है कि बनाए जाने वाले अधिकार या दायित्व उसकी समाप्ति के बाद भी बने रहेंगे। अध्यादेश अस्थायी कानून की प्रकृति का नहीं है।अध्यादेश की शर्तें विशिष्ट आवश्यकताओं के आधार पर होती हैं।किसी अध्यादेश को प्रख्यापित करने का प्राधिकार केवल तभी उत्पन्न

होता है जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा होता है और जब आकस्मिक कार्रवाई की आवश्यकता होती है।संविधान में कहा गया है कि कोई अध्यादेश विधायिका के पुनः समवेत होने के बाद छह सप्ताह से अधिक की अवधि के लिए वैध नहीं रहेगा और इस अवधि के भीतर भी यदि इसे अस्वीकृत कर दिया जाता है तो यह निष्प्रभावी हो जाएगा।अतः, किसी सक्षम विधानमंडल द्वारा, जिसके पास विधि अधिनियमित करने की पूर्ण शक्तियां हैं, विधि निर्माण को शासित करने वाले विचारों को अस्थायी अधिनियमिति के समतुल्य नहीं माना जा सकता।यदि हम सम्मान के साथ कहें तो भूपेन्द्र कुमार बोस के निर्णय में मूल त्रुटियां यह है कि इसमें एक अध्यादेश को उसी स्तर पर रखा गया है जिस पर एक अस्थायी अधिनियम को रखा गया है।ये फैसला

वेंकट रेड्डी ने भूपेंद्र कुमार बोस के तर्क का अनुसरण किया है।इसके पास.

संविधान पीठ ने कहा कि यदि संसद या राज्य विधानसभाएं अध्यादेश लागू होने से पहले की स्थिति को पुनर्जीवित करना चाहती हैं, तो उसे एक ऐसा कानून लाना होगा जिसका भूतलक्षी प्रभाव हो।विधायिका द्वारा अस्वीकृति के कारण, यह माना गया था कि पूर्ण लेनदेन को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।टी वेंकट रेड्डी के फैसले का प्रभाव अध्यादेशों को विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति में रखना और संसद की सर्वोच्चता की अवहेलना करना है।एक उदाहरण के रूप में, एक ऐसी स्थिति ले लीजिए जहां एक अध्यादेश है

106 पृष्ठ 107

विधिवत अधिनियमित विधान द्वारा सृजित अतिष्ठित अधिकार।यदि अध्यादेश निष्प्रभावी हो जाता है तो टी वेंकट रेड्डी मामले में यह निर्णय लिया जाएगा कि अध्यादेश के तहत जो परिणाम सामने आए हैं, उन्हें संसद द्वारा पारित एक पूर्वव्यापी कानून द्वारा ही बदला जा सकता है, जो पहले की स्थिति को बहाल करता है।पदानुक्रमित अर्थ में, यह वास्तव में अध्यादेश बनाने की शक्तियों के संबंध में विधान की स्थिति को अधीनस्थ बनाता है।संविधान पीठ के दो फैसलों के आधार और नींव को सही संवैधानिक स्थिति को प्रतिबिंबित करने वाले रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

58 तो ऐसे अध्यादेश के तहत उत्पन्न होने वाले अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों या देनदारियों पर क्या प्रभाव पड़ता है जो काम करना बंद कर देता है?अनुच्छेद 213 (2) में दो महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं जिनका गहन विश्लेषण किया गया है।पहला यह है कि किसी अध्यादेश का वैसा ही बल और प्रभाव होगा जैसा विधायिका के एक अधिनियम का होता है, जबकि दूसरा यह है कि यह विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि तक या अस्वीकृति के प्रस्ताव पर लागू नहीं रहेगा।" का वही बल और प्रभाव होगा " पद की प्रस्तावना में " इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश " शब्दों का प्रयोग किया गया है। अनुच्छेद 213 के तहत प्रख्यापित अध्यादेश के संदर्भ में संविधान स्पष्ट रूप से यह अर्थ देता है कि विधायी अधिनियमिति के समान बल और प्रभाव रखने के लिए अध्यादेश को अनुच्छेद 213 की अपेक्षाओं को अवश्य पूरा करना चाहिए।"" "इसके अलावा," "" "एक ही शक्ति और प्रभाव होगा" "" "का स्थान" "" "लेकिन" "" "ऐसे प्रत्येक अध्यादेश" "" "ने लिया है।" ""----------(क) और (ख) में जो कहा गया है, उसके अधीन होगा।प्रख्यापन की शक्ति के वैध प्रयोग के लिए पूर्व-शर्तें और प्रख्यापन के बाद की शर्तें दोनों हैं

एक समग्र योजना का हिस्सा।अध्यादेश के लिए दोनों तरह की शर्तों को पूरा करना होगा, ताकि समान प्रभाव और बल का संरक्षण हो सके।एक बार जब यह काल्पनिक कल्पना काम करती है, तो इसका परिणाम यह होता है कि इसके कार्यकाल के दौरान, एक अध्यादेश उसी तरह से काम करेगा जैसे कि विधायिका के एक अधिनियम में होता है।अनुच्छेद 213 (2) (ए) के प्रावधानों के आधार पर लागू नहीं होने वाले अध्यादेश का क्या परिणाम होगा?दो प्रतिस्पर्धी निर्माण हैं जिन पर विचार किया जाना है।"" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "" "इस अर्थ में काम करना बंद करने का अर्थ यह होगा कि उस तारीख से अध्यादेश का भविष्य में कोई संचालन नहीं होगा।यह अध्यादेश अपने प्रारंभ में अमान्य नहीं है।दूसरा अर्थ, जिस पर व्याख्या के लिए विचार किया जा सकता है, वह यह है कि इस अभिव्यक्ति का अर्थ होगा कि अध्यादेश के कार्यकाल के दौरान उत्पन्न सभी कानूनी परिणाम समाप्त हो जाएंगे। दूसरे निर्माण के अनुसार, जो पहले से अधिक व्यापक है, किसी अध्यादेश के काम करना बंद करने का परिणाम एक अध्यादेश की वैधता से संबंधित होगा।

59 अब, एक विचार जो ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि अनुच्छेद 213 में अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों या देनदारियों की बचत के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं किया गया है जो एक अध्यादेश के तहत उत्पन्न हुआ है जो या तो अपनी अवधि की

समाप्ति पर या अस्वीकृति के किसी प्रस्ताव पर लागू नहीं होता है।महत्वपूर्ण बात यह है कि संविधान के अन्य उपबंध भी हैं जहां,

(ख) जब ऐसा आशय हो तो संविधान ने किसी कानून के तहत उत्पन्न होने वाले अधिकारों या देनदारियों को बचाने के लिए स्पष्ट प्रावधान किए हैं।अनुच्छेद 352 (4) के तहत आपातकाल की घोषणा के लिए प्रत्येक प्रस्ताव को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाना होता है और एक महीने की समाप्ति पर यह 'निष्क्रिय' हो जाएगा जब तक कि संसद के दोनों सदनों के प्रस्तावों द्वारा उस अवधि के दौरान इसे अनुमोदित नहीं किया जाता है।अनुच्छेद 352 के खंड 5 के तहत, इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, जब तक इसे वापस नहीं लिया जाता है, छह महीने की अवधि की समाप्ति पर लागू नहीं होगी।जब आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को राज्य सूची के मामलों के संबंध में भी कानून बनाने की शक्ति प्रदान की जाती है।अनुच्छेद 358 (1) में प्रावधान है कि जब आपातकाल की घोषणा लागू होती है, तो अनुच्छेद 19 की कोई भी बात भाग 3 में परिभाषित राज्य की कोई भी कानून बनाने की शक्ति को प्रतिबंधित नहीं करेगी, जिसे राज्य भाग 3 के प्रावधानों के बिना बनाने में सक्षम होगा।तथापि, इस प्रकार बनाया गया कोई कानून अपनी अक्षमता की सीमा तक उन बातों को छोड़कर, जो इस प्रकार विधि के समक्ष की गई हैं या करने का लोप किया गया है, उद्घोषणा के प्रचलन से समाप्त होते ही प्रभावी नहीं रहेगा।इसी तरह अनुच्छेद 359 (1) में प्रावधान है कि आपातकाल की घोषणा के संचालन के दौरान राष्ट्रपति घोषणा कर सकते हैं कि भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अदालत में जाने का अधिकार (अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर) निलंबित रहेगा।तथापि, अनुच्छेद 359 (1 क) में यह उपबंध है कि बनाई गई कोई भी विधि, भाग 3 के साथ अक्षमता की सीमा तक, पूर्वोक्त आदेश के प्रवर्तन में न रहने पर, उन बातों के सिवाय, जो विधि के इस प्रकार प्रभावी न होने से पूर्व की गई हों या किए जाने का लोप किया गया हो, प्रभावी नहीं रहेगी।

109 पृष्ठ 110

60 राष्ट्रपति की शक्ति की प्रकृति और आपातकालीन प्रावधानों की संरचना निस्संदेह अनुच्छेद 123 और 213 के तहत अध्यादेश बनाने की शक्तियों से अलग है।तथापि, यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह प्रावधान करते समय कि आपातकाल की घोषणा वापस लिए जाने के बाद संसदीय विधि का प्रवर्तन समाप्त हो जाएगा, संविधान पीठ ने अनुच्छेद 358 (1) और 359 (1) (ए) में एक अभिव्यक्त बचत खंड का प्रावधान किया है।ऐसा प्रावधान

आवश्यक था क्योंकि आपातकाल की घोषणा का प्रभाव संसद को अनुच्छेद 19 के नियंत्रण के बिना कानून बनाने में सक्षम बनाता है।इसके बिना, अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करने वाला कोई कानून अनुच्छेद 13 के तहत शून्य होगा।एक बार जब उद्घोषणा का प्रवर्तन समाप्त हो जाता है तो कानून का प्रभाव समाप्त हो जाता है।इसलिए, कानून के लागू होने के समय की गई या करने से छूट गई चीजों के संबंध में एक विशिष्ट बचत प्रावधान किया गया है।

61 इसी प्रकार, अनुच्छेद 356 (1) (बी) के अधीन राष्ट्रपति की उद्घोषणा यह घोषणा कर सकती है कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा।ऐसी प्रत्येक उद्घोषणा को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाना अपेक्षित है और दो महीने की समाप्ति पर यह तब तक लागू नहीं रहेगी जब तक कि इसे संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है।अनुच्छेद 357 के तहत, राज्य विधानमंडल की शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा बनाया गया कोई भी कानून, जो अनुच्छेद 356 के तहत उद्घोषणा के बिना बनाने के लिए सक्षम नहीं होता, उद्घोषणा की समाप्ति के बाद भी तब तक लागू रहेगा जब तक सक्षम विधानमंडल द्वारा इसे परिवर्तित या निरस्त या संशोधित नहीं कर दिया जाता।यह एक ऐसी स्थिति है जहां संविधान ने उद्घोषणा की समाप्ति के बाद भी कानून को जारी रखने का प्रावधान किया है।

62 अनुच्छेद 249 संसद को राज्य सूची में प्रगणित मामलों पर कानून बनाने में सक्षम बनाता है यदि राज्य सभा ने अपने उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषणा की है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद को राज्य सूची में शामिल किसी विषय पर कानून बनाना चाहिए।इसी तरह अनुच्छेद 250 के तहत संसद को आपातकाल की घोषणा के समय राज्य सूची में शामिल किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है।हालांकि, अनुच्छेद 249 (3) और अनुच्छेद 250 (2) में कहा गया है कि संसद द्वारा अधिनियमित कानून प्रस्ताव के छह महीने की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगा।हालांकि, अनुच्छेद 249 (3) और अनुच्छेद 250 (2) दोनों में अवधि की समाप्ति से पहले की गई या छोड़ी गई बातों के संबंध में एक बचत खंड शामिल है।इस तरह की बचत आवश्यक हो गई है क्योंकि संसद ने अनुच्छेद 249 के तहत एक प्रस्ताव के अनुसरण में या आपातकाल की घोषणा के दौरान अनुच्छेद 250 के तहत राज्य सूची के किसी मामले पर एक कानून बनाया है (जो संसद अन्यथा अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं है)।एक बार कानून का प्रभाव समाप्त हो जाने के बाद, निर्माताओं ने

इसके तहत की गई चीजों के संबंध में बचत शुरू करना आवश्यक समझा।यह इसलिए आवश्यक था क्योंकि अनुच्छेद 249 और 250 के बिना विधायी क्षमता में कमी वाला कानून अमान्य होगा।

63 एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ 57 में न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी ने अपनी और न्यायमूर्ति एस. सी. अग्रवाल की ओर से यह मत व्यक्त किया कि अनुच्छेद 356 के अधीन संसद के दोनों सदनों के समक्ष उद्घोषणा करने की आवश्यकता और किसी संकल्प द्वारा अनुमोदित किए बिना इसकी समाप्ति के उपबंध

दो महीने की समाप्ति से पहले दोनों सदनों द्वारा पारित " को शक्ति पर अंकुश लगाने और कार्यपालिका पर संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत के समर्थन के रूप में माना जाता है।राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ वाले मामले में पहले के फैसले में यह विचार व्यक्त किया गया था कि संसद द्वारा दो महीने के भीतर उद्घोषणा को अस्वीकृत करने या अस्वीकृत करने के बाद भी उद्घोषणा दो महीने के लिए वैध होगी।इसके अलावा, यह भी माना गया था कि भले ही दोनों सदन उद्घोषणा का अनुमोदन या अस्वीकृति नहीं करते हैं, फिर भी जिस सरकार को बर्खास्त कर दिया गया है या जिस विधानसभा को भंग कर दिया गया है, वह पुनर्जीवित नहीं होती है। एस. आर. बोम्मई मामले में न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी के निर्णय में इस विचार को निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ अस्वीकार कर दिया गयाः

290...----------विद्वान न्यायाधीशों के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ, हम इन बातों से सहमत नहीं हो पाते जहां तक यह कहता है कि जहां तक दोनों संसद के दोनों सदन इसे अस्वीकृत करते हैं या नहीं करते हैं (क) उद्घोषणा का अनुमोदन कर सकेगी, और बर्खास्त कर दिया गया है, पुनर्जीवित नहीं होता है।(द स्टेट ऑफ राजस्थान [(1977) 3 एससीसी 592:ए० आई० आर० 1977 एसएससी 1361:(1978) 1 एस. सी. आर. 1] यह भी अभिनिर्धारित करता है कि अस्वीकृति या अस्वीकृति से विधान सभा जो लेकिन हमें इस पहलू से निपटने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारे द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण के अनुसार इसमें ऊपर, ऐसा कोई विघटन अनुज्ञेय नहीं है। (दोनों सदनों की मंजूरी से पहले)खंड इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि इन शब्दों का प्रयोग (ख) दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा अनुमोदित संसद।'अनुमोदन' शब्द का अर्थ है 'अनुमोदन' उच्च या वरिष्ठ द्वारा कार्रवाई की पुष्टि प्राधिकार।दूसरे शब्दों में, की कार्रवाई राष्ट्रपति को संसद की मंजूरी लेनी होती है।----- "" "अनुमोदन" "का एक आंतरिक अर्थ है" जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा

सकता।अस्वीकृति या अननुमोदन का अर्थ है कि संसद के सदन वे कह रहे हैं कि राष्ट्रपति की कार्रवाई नहीं थी न्यायोचित या आवश्यक है और यह कि यह अब और जारी नहीं रहेगा।

ऐसे मामले में उद्घोषणा व्यपगत हो जाती है, अर्थात्, दो महीने की समाप्ति पर प्रचालन बंद हो जाता है। महीने-जिसका आवश्यक परिणाम है पूर्व की स्थिति को पुनर्जीवित करता है। यह कहना है कि अस्वीकृति या अस्वीकृति के बावजूद, पूर्व की यथास्थिति को पुनर्जीवित नहीं करना लूटना है इसकी सामग्री और अर्थ के अनुमोदन की अवधारणा। इस तरह का दृष्टिकोण खंड द्वारा प्रदान की गई जांच को प्रस्तुत करता है (3) अप्रभावी और किसी भी तरह से महत्वहीन। कार्यपालिका संसद को बताती होगीः'मेरे पास है। सरकार को बर्खास्त कर दिया।अब, क्या आप? अनुमोदन या अस्वीकृति का कोई महत्व नहीं है क्योंकि सरकार किसी भी स्थिति में को पुनर्जीवित किया।यह कार्य पूरा हो चुका है।बेहतर होगा कि आप इसे मंजूरी दे दें। क्योंकि आपके पास व्यावहारिक रूप से कोई विकल्प नहीं है।हम करते हैं। नहीं लगता है कि इस तरह के एक पाठ्यक्रम के अनुरूप है संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धांत और

कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण, बुनियादी संसदीय सर्वोच्चता का आधार।"" "यह होगा"

वास्तव में इसका अर्थ कार्यपालिका की सर्वोच्चता से है संसद।के अधीन सरकार की बर्खास्तगी खंड (1) के उपखंड (क) जो किसी जीवित प्राणी की मृत्यु के बराबर है। इसमें कोई अपरिवर्तनीयता नहीं है।यह सक्षम है पुनर्जीवित करने में और पुनर्जीवित करेगा,विधान सभा जिन्हें निलंबित एनीमेशन में रखा जा सकता था जीवन में भी वापस लौटता है।जहां तक वैधता का संबंध है किए गए कार्य, पारित किए गए आदेश और कानून, यदि कोई हो, के संचालन की अवधि के दौरान की गयी उद्घोषणा का संबंध है, वे बने रहेंगे (क) जहां तक अस्वीकृति का संबंध है, अप्रभावित रहेगा, या गैर-अनुमोदन उद्घोषणा को प्रस्तुत नहीं करता है पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ अवैध.(आईडी पृ. 226) न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत ने अपनी ओर से और न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह ने अभिनिर्धारित किया किः कोई कारण नहीं है कि मंत्रिपरिषद क्यों है। और विधान सभा को खड़ा नहीं होना चाहिए के अविधिमान्यकरण के परिणामस्वरूप पुनःस्थापित उद्घोषणा, जो सामान्य विधिक होने के कारण है अमान्य क्रिया का प्रभाव.(पृष्ठ 122 पर) इस दृष्टि से, यदि उद्घोषणा को अविधिमान्य ठहराया जाता है, तो भले ही इसे संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित किया जाता है, न्यायालय को उद्घोषणा जारी करने से पहले की यथास्थिति बहाल करने और विधानसभा और मंत्रालय को बहाल करने की शक्ति होगी।तथापि, ऐसा करते समय न्यायालय उस तारीख तक राहत को उपयुक्त

रूप से ढालने और राष्ट्रपति की कार्रवाइयों को विधिमान्य घोषित करने के लिए स्वतंत्र होगा।इसके अलावा, संसद और राज्य विधायिका राष्ट्रपति के कार्यों को मान्य करने के लिए स्वतंत्र होगी।कानून के इस बयान पर न्यायमूर्ति एस आर पांडियन ने सहमति व्यक्त की। हालांकि, न्यायमूर्ति के. रामास्वामी ने राजस्थान राज्य के विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि किसी विधानसभा को पुनर्जीवित करने या हटाई गई सरकार को फिर से शामिल करने के लिए संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।न्यायमूर्ति ए एम अहमदी आमतौर पर न्यायमूर्ति के रामास्वामी के विचारों से सहमत थे, हालांकि उन्होंने इस पहलू पर विशेष रूप से कोई राय व्यक्त नहीं की है।न्यायमूर्ति जे एस वर्मा और न्यायमूर्ति योगेश्वर दयाल ने घोषणा की गैर-औचित्यता पर अपना निर्णय रखा और राजस्थान राज्य के निर्णय पर भरोसा किया।

64 राजस्थान राज्य में इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण न्यायमूर्ति वाई. वी. चंद्रचूड़, उंतवालिया और फजल अली के बहुमत के निर्णय में परिलक्षित होता है।इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संसद द्वारा उद्घोषणा की अस्वीकृति का परिणाम पूर्व की यथास्थिति का पुनरुद्धार नहीं होगा।राजस्थान राज्य में इस दृष्टिकोण को एस. आर. बोम्मई में उलट दिया गया था।हालांकि, इस स्तर पर, यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण हो सकता है कि निर्णय के दौरान न्याय

चंद्रचूड़ ने कहा कि अनुच्छेद 356 और 123 के बीच अंतर है।अनुच्छेद 123 के तहत अध्यादेश बनाने की राष्ट्रपति की शक्ति के मामले में, यह पाया गया कि संसद के प्रस्ताव द्वारा किसी अध्यादेश को अस्वीकृत किया जा सकता है और निर्धारित अवधि से पहले ही वह लागू नहीं रहेगा।हालांकि, अनुच्छेद 356 के तहत, एक उद्घोषणा के पास दो महीने का जीवन सुनिश्चित था।न्यायमूर्ति भगवती के निर्णय में भी इसका उल्लेख किया गया है।चाहे जो भी हो, एस. आर. बोम्मई में नौ न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का महत्व संसद द्वारा उद्घोषणा की अस्वीकृति या अस्वीकृति के परिणामों को स्पष्ट करने में निहित है।ऐसी स्थिति में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अस्वीकृति या गैर-अनुमोदन संसद द्वारा इसे अस्वीकार करने के बराबर है, कि राष्ट्रपति की कार्रवाई उचित या आवश्यक नहीं थी और यह आगे जारी नहीं रहेगी।आवश्यक परिणाम यह है कि पूर्व की यथास्थिति फिर से बहाल होगी।राजस्थान राज्य में इसके विपरीत मत से संसद अपने नियंत्रण और सर्वोच्चता से वंचित हो जाएगी।इस

पहलू पर बहुमत के निर्णय का औचित्य यह है कि यदि संसद द्वारा किसी उद्घोषणा की अस्वीकृति या अस्वीकृति के बावजूद पूर्व की यथास्थिति को पुनर्जीवित नहीं करना है, तो संसदीय सर्वोच्चता कार्यपालिका की सर्वोच्चता का मार्ग प्रशस्त करेगी।

65 संविधान ने अपने उपबंधों में 'निरस्त', 'शून्य', 'प्रभाव छोड़ना' और 'लागू नहीं होना' सहित विभिन्न वाक्यांशों का उपयोग किया है।केशवन माधव मेनन बनाम बम्बई राज्य में न्यायमूर्ति फजल अली ने अपनी असहमति की राय के दौरान निम्नलिखित टिप्पणियों में इन वाक्यांशों के उपयोग पर गौर किया:

> संविधान के प्रति निर्देश से पता चलेगा कि "इसके निर्माताओं ने" "निरसन" "शब्द का उपयोग किया है।" जहां आवश्यक हो (देखें अनुच्छेद 252,254,357)। 372 और 395) है।उन्होंने कुछ इस तरह के शब्दों का भी इस्तेमाल किया है। (देखें अनुच्छेद 245,255 और 276) (देखें अनुच्छेद 358 और 372) उन्होंने शून्य शब्द का प्रयोग किया है। केवल दो अनुच्छेदों में, ये अनुच्छेद 13 (1) और अनुच्छेद 154 और ये दोनों अनुच्छेद मामलों से संबंधित हैं जहां कोई कतिपय विधि किसी अन्य विधि के विरुद्ध है, जिससे अधिक पवित्रता जुड़ी हुई है।इससे आगे भी ऐसा लगता है कि जहां वे चीजों को बचाना चाहते थे विद्यमान विधि के अधीन किया गया या करने का लोप किया गया, उन्होंने इस उद्देश्य के लिए उपयुक्त भाषा का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 249,250,357,358 और 369। पूर्णता और परिशुद्धता जो निर्माताओं ने भारत के संविधान में निम्नलिखित विषयों पर विचार किया गया हैः जो संदर्भ दिया गया है, मुझे अलग करता है अनुच्छेद 13 (1) में इस तरह के प्रावधान को शामिल किया गया है
>
> जिसे हमें पढ़ने के लिए कहा गया है।

इन वाक्यों के अलग-अलग अर्थ हैंःदोनों की तुलना एक-दूसरे से नहीं की जा सकती। नतीजतन, अदालत को इस बात को लेकर सावधान रहना चाहिए कि वह इस अभिव्यक्ति को उसी अर्थ में इस्तेमाल करना बंद कर दे, जिस अर्थ में इस अभिव्यक्ति का इस्तेमाल किया जाता है।यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि अनुच्छेद 213 के खंड 3 में एक अध्यादेश के संबंध में 'शून्य' अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है जो एक प्रावधान बनाता है जो राज्यपाल द्वारा अनुमति प्राप्त राज्य के विधानमंडल के किसी अधिनियम में अधिनियमित होने पर मान्य नहीं होगा।किसी अध्यादेश में निहित इस तरह के प्रावधान को अनुच्छेद 213 के

खंड 3 द्वारा शून्य घोषित किया जाता है।स्पष्ट रूप से, जब निर्माता यह संकेत देना चाहते थे कि किसी विशेष स्थिति में अध्यादेश का कोई प्रावधान शून्य हो जाएगा, तो संविधान ने स्पष्ट रूप से इस वाक्यांश का उपयोग किया है।"यह" "शून्य" "अभिव्यक्ति के साथ" "काम करना बंद कर दें" "अभिव्यक्ति की समानता के खिलाफ होगा।"दोनों के अलग-अलग अर्थ हैं।विशेष रूप से, जहां एक ही संवैधानिक अनुच्छेद ने दोनों का उपयोग किया है

"" "(ii) वाक्यांश-(खंड 2) में" "" "प्रचलन बंद करें" "" "और (खंड 3) में" "" "शून्य" "" "को दूसरे के समान अर्थ के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है।" ""

66 कोई अध्यादेश जो प्रचालित नहीं है, शून्य नहीं है।एक उपकरण के रूप में, यह मृत नहीं है।अध्यादेश के कार्यकाल के दौरान, इसका वही बल और प्रभाव है जो विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून का होता है।

67 यह महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 213 (2) (क) में 'प्रवर्तन में नहीं रहना' अभिव्यक्ति ऐसे अध्यादेश के संबंध में लागू होती है जिसकी अवधि निर्धारित अवधि के बाद समाप्त हो जाती है और साथ ही ऐसे अध्यादेश के संबंध में भी लागू होती है जिसे विधायिका द्वारा अस्वीकृत किया गया है।इस प्रकार अभिव्यक्ति की अंतर्वस्तु का अर्थ दो स्थितियों के संबंध में दो अलग-अलग चीजें नहीं हो सकती हैं।जिस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की जरूरत है, वह यह है कि क्या एक अध्यादेश, जिसकी प्रकृति सीमित है, भविष्य के लिए (अधिकारों, विशेषाधिकारों, देनदारियों और दायित्वों के निर्माण के संदर्भ में) परिणाम ला सकता है, जो अध्यादेश के जीवन से परे होगा।इस मुद्दे पर निर्णय करते समय न्यायालय को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो अध्यादेशों पर विधायी नियंत्रण के बुनियादी संवैधानिक आधार को आगे बढ़ाए। कानून के शासन और कार्यपालिका की विधायिका के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी की ठोस नींव पर टिके रहने के लिए संसदीय लोकतंत्र के लिए इस संवैधानिक मूल्य का संरक्षण आवश्यक है।उन्होंने कहा कि संविधान की खामोशी को कानून के शासन को बढ़ाने वाले अर्थों से परिपूर्ण किया जाना चाहिए।अध्यादेश बनाने की शक्ति की घटना के रूप में कार्यपालिका को श्रेय देना, संसदीय लोकतंत्र में भावी पीढ़ियों के लिए बाध्यकारी प्रभाव पैदा करने की असीमित क्षमता एक खतरनाक उदाहरण स्थापित करेगी।

अध्यादेश बनाने की शक्ति की अदालत की व्याख्या, जो सरकार की कार्यकारी शाखा में उत्पन्न होती है, इस बुनियादी धारणा से अनजान नहीं हो सकती है कि कानून बनाने की

शक्ति का प्राथमिक रूप विधायिका के माध्यम से है।अतः, अध्यादेश बनाने की शक्ति पर न्यायालय द्वारा रखी गई व्याख्या को सावधानीपूर्वक यह सुनिश्चित करने के लिए संरचित किया जाना चाहिए कि शक्ति वही बनी रहे जो हमारे संविधान निर्माताओं का आशय था:संवैधानिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक असाधारण शक्ति।

68 हमने पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने कारण व्यक्त कर दिए हैं कि भूपेंद्र कुमार बोस में संविधान पीठ का निर्णय जिस बुनियादी नींव पर आधारित था वह गलत है। संविधान पीठ ने एक अध्यादेश की तुलना सक्षम विधायिका द्वारा बनाए गए अस्थायी अधिनियम से की।यह दृष्टिकोण सक्षम विधायिका के अधिनियमन और अध्यादेश के बीच महत्वपूर्ण अंतर को ध्यान में रखने में विफल रहा है।अध्यादेशों को प्रख्यापित करने की संवैधानिक शक्ति अनुच्छेद 123 और 213 में वर्णित अपेक्षाओं द्वारा सावधानीपूर्वक निर्धारित की गई है।शक्ति अवधि और पर्यवेक्षी चरित्र दोनों की सीमाओं के अधीन है।संविधान निर्माताओं का आशय, जैसा कि अनुच्छेद 123 और अनुच्छेद 213 के पाठ में परिलक्षित होता है, संसदीय नियंत्रण के लिए अध्यादेश बनाने की शक्ति के अधीन है।भूपेंद्र कुमार बोस के फैसले में स्वीकार किए गए स्थायी अधिकार सिद्धांत को एक अस्थायी अधिनियम की समाप्ति से उत्पन्न परिणामों से अलग कर दिया गया था।उस सिद्धांत को अध्यादेश बनाने की शक्ति पर लागू नहीं किया जा सकता।किसी अध्यादेश के संदर्भ में स्थायी अधिकारों के सिद्धांत को स्वीकार करने से ऐसी स्थिति पैदा होगी जहां राज्यपाल द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जाएगा

अधिकारों और विशेषाधिकारों, दायित्वों और देनदारियों के निर्माण के संदर्भ में जीवित रहना कि ये एक स्थायी चरित्र के हैं।विधायिका को अध्यादेश पर चर्चा करने या बहस करने का भी अवसर नहीं मिला (जहां, वर्तमान मामले में, विधायिका के समक्ष कोई भी अध्यादेश नहीं रखा गया था) हो सकता है कि किसी अध्यादेश को विशेष रूप से अस्वीकृत कर दिया गया हो या निर्धारित अवधि की समाप्ति पर उसका प्रवर्तन बंद हो गया हो।स्थायी अधिकार सिद्धांत में संसदीय नियंत्रण और सर्वोच्चता के अल्पीकरण में अध्यादेश लागू करने की शक्ति को कुछ हद तक स्थायित्व का श्रेय दिया गया है।शक्ति प्रदान करने के संबंध में ऐसी कोई धारणा उन सिद्धांतों के विपरीत होगी जो एस आर बोम्मई में निर्धारित किए गए हैं।वेंकट रेड्डी मामले में दिया गया फैसला मूल रूप से एक ही तर्क का अनुसरण करता है, लेकिन यह कहता है कि यदि संसद एक अध्यादेश के तहत पूरे किए गए मामलों को पलटना चाहती है, तो उसे

भूतलक्षी प्रभाव के साथ एक विशिष्ट कानून बनाना होगा।हमारे विचार में यह विधायी शक्ति के प्रयोग के संबंध में संवैधानिक व्यवस्था को उलट देता है।69 न्यायालय के समक्ष जो मुद्दा है वह यह है कि क्या किसी अध्यादेश के या तो विधायिका द्वारा अस्वीकृति के परिणामस्वरूप या विधायिका की सभा के छह महीने की विहित अवधि के बाद समाप्त होने पर, प्रवर्तन में नहीं रहने पर, उसके सभी परिणाम जो हुए हैं, आवश्यक रूप से समाप्त हो जाएंगे और मिट जाएंगे।वर्तमान मामले में न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर के निर्देश आदेश में 'स्थायी प्रभाव' और 'स्थायी चरित्र के अधिकारों' की अभिव्यक्ति में निहित अस्पष्टता का उल्लेख किया गया है। न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर और न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा की पीठ, जो दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ है, का सामना बाध्यता के साथ हुआ

भूपेंद्र कुमार बोस और टी. वेंकट रेड्डी में दो संविधान पीठों के निर्णयों का प्रभाव।दो बाध्यकारी पूर्ववर्तियों द्वारा प्रदान किए गए ढांचे के भीतर, न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि किसी अध्यादेश के प्रभाव को स्थायी माना जा सकता है जब यह अपरिवर्तनीय हो या इसे पलटना अत्यधिक अव्यावहारिक या सार्वजनिक हित के खिलाफ हो।तीन गुना परीक्षण निर्धारित किया गया है:पहला है प्रभाव कि अपरिवर्तनीयता, दूसरा है अध्यादेश के तहत उत्पन्न परिणाम को पलटने की अव्यवहारिकता और तीसरा है जनहित की कसौटी।हम जो सिद्धांत निर्धारित करेंगे, वह दो संविधान पीठ के फैसलों द्वारा विवश नहीं है, जिन्होंने स्थायी अधिकार सिद्धांत को प्रतिपादित किया है, एक बार जब हम यह मान लेते हैं कि सिद्धांत को गलत तरीके से एक अस्थायी कानून के संदर्भ से उठाया गया है और अध्यादेश बनाने की शक्ति पर लागू किया गया है।

70 न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर का निर्णय इंगित करता है (एक के रूप में)

इस विषय पर टिप्पणीकार का कहना है कि विद्वान न्यायाधीश किसी न किसी रूप में गहन जांच में शामिल होने के लिए तैयार हैफिर भी, अपरिवर्तनीयता, अव्यवहार्यता या जनहित की तीन स्तरीय कसौटी, यदि मोटे तौर पर लागू की जाए तो, लगभग हर उस स्थिति को कवर कर सकती है जहां एक अध्यादेश का प्रवर्तन बंद हो गया है।एक विध्वंस किया जा सकता है। किसी मुकदमे के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश पारित किया जा सकता है।किसी औद्योगिक उपक्रम का अधिग्रहण किया जा सकता है।संविदा या आकस्मिक कर्मचारियों का बड़े पैमाने पर नियमितीकरण किया जा सकता है।अनधिकृत संरचनाओं का वैधीकरण किया

जाए।अनगिनत अलग-अलग स्थितियों पर विचार किया जा सकता है।अध्यादेश के तहत की जाने वाली हर कार्रवाई में बाध्यकारी अधिकार प्रस्तुत चाहिए,

ऐसे दायित्व और देनदारियां जो इसके समापन के बाद भी जीवित रहेंगी?हमारे विचार में, मुद्दे का अवधारण करने में व्यापक विचार लोकहित या संवैधानिक आवश्यकता का तत्व होना चाहिए।अंततः, जनहित के इस तत्व ने ही भूपेंद्र कुमार बोस की अदालत को यह निर्णय लेने में मार्गदर्शन किया होगा कि एक अध्यादेश द्वारा चुनाव की वैधता को शून्य नहीं ठहराया जाना चाहिए (हालांकि अदालत द्वारा अपनाया गया तर्क त्रुटिपूर्ण था)।भूपेंद्र कुमार बोस भी अपने तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से परेशान करने वाले पहलुओं को उठाते हैं क्योंकि उस मामले में अध्यादेश के समान प्रावधानों को शामिल करने के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष पेश किया गया एक विधेयक विफल हो गया था।चाहे जो भी हो, राहत को ढालने के निर्णय में अदालत का प्रयास यह निर्धारित करने का होगा कि क्या अध्यादेश के तहत जो कुछ भी किया गया है, उसे रद्द करना स्पष्ट रूप से सार्वजनिक हित के विपरीत होगा।इस अर्थ में अव्यवहारिकता और अपरिवर्तनीयता ऐसे पहलू हैं जो यह तय करते समय संतुलन में रखे गए हैं कि जनहित कहां निहित है।अव्यवहार्यता को अपने आप में एक स्वतंत्रता दर्जा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि तब किसी अध्यादेश के प्रभावों को समाप्त करने में तथाकथित जटिलताओं पर जोर देना कार्यपालिका के लिए काफी सरल होगा।चूंकि मूल संवैधानिक मूल्य, जो विवाद्यक पर है, संसदीय सर्वोच्चता और नियंत्रण का है, इसलिए राहत का ढालना ऐसे मामलों में न्यायोचित ठहराया जा सकता है जिसमें जनहित के गंभीर तत्व या स्पष्ट और तर्कसंगत सामग्री द्वारा प्रदर्शित संवैधानिक आवश्यकता शामिल है।

विधायिका के समक्ष अध्यादेशों को रखना

71 अनुच्छेद 213 (2) (ए) में राज्य विधानमंडल के समक्ष एक अध्यादेश रखे जाने की अपेक्षा की गई है।इसी तरह की आवश्यकता अनुच्छेद 123 (2) (ए) में निहित है।न ही अनुच्छेद

123 और अनुच्छेद 213 में विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंध नहीं है कि कोई अध्यादेश विधायिका के समक्ष उसके पुनः समवेत होने पर कब रखा जाना चाहिए।संसद के संबंध में स्थिति का निर्धारण सुभाष सी कश्यप ने अपनी पुस्तक 'संसदीय प्रक्रिया-कानून,

विशेषाधिकार, अभ्यास और पूर्वोदाहरण' में किया है।नियम 71, जिसका लेखक इस प्रकार से उद्धरण देता हैः

अध्यादेशों के संबंध में विवरण-71 नियम (1) जब कोई विधेयक किसी अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने की मांग करता है संशोधन के साथ या बिना संशोधन के लिए सदन के समक्ष रखा जाएगा विधेयक के साथ-साथ ऐसी परिस्थितियां जो तत्काल आवश्यक थीं

अध्यादेश द्वारा विधान. (2) जब कभी कोई अध्यादेश, जिसमें उपबंधों में पूर्णतः या भागतः या उपांतरण करके, - सदन के समक्ष लंबित विधेयक का प्रख्यापन उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाला एक वक्तव्य जो इसके लिए तत्काल कानून बनाने की जरूरत थी। अध्यादेश को सभा पटल पर रखा जाएगा निम्नलिखित के साथ सत्र का शुभारंभ उद्घोषणा अध्यादेश।

(जोर दिया गया)

संसद की प्रक्रिया (कश्यप पूर्व में देखें) यह है कि जहां सत्र के पहले दिन, सदन को अगले दिन की बैठक में मृत्यु संबंधी अध्यादेशों को सभा पटल पर रखने के बाद स्थगित कर दिया जाता है।सामान्यतया राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश प्रख्यापन के बाद सदन की पहली बैठक में रखे जाते हैं।

72 बिहार विधान सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के नियम 62 में नियम 140 में एक उपबंध है जो इंगित करता है कि

राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी किए जाने के बाद जल्द से जल्द विधान सभा के सदस्यों को अध्यादेश उपलब्ध कराना होगा।विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि के भीतर (वह अवधि जिसके दौरान अध्यादेश का संचालन जारी रहेगा) कोई भी सदस्य तीन दिन के नोटिस के साथ अध्यादेश का अनुमोदन करने वाला प्रस्ताव पेश कर सकता है।

73 विधायिका के समक्ष अध्यादेश प्रस्तुत करने का महत्व यह है कि यह विधायिका को पर्यवेक्षण और नियंत्रण की अपनी संवैधानिक शक्ति को आगे बढ़ाने में सक्षम बनाता है। विधायिका को यह निर्धारित करने का अधिकार है कि किसी अध्यादेश को अस्वीकृत किया जाना चाहिए या नहीं।अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता और आवश्यकता पर विधायिका द्वारा चर्चा और बहस की जा सकती है।सरकार, जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी है और

विधायिका के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी रखती है, अध्यादेश की तर्ज पर (या ऐसे संशोधनों के साथ जो उचित समझे जाते हैं) एक विधेयक को उस स्थिति में विधायिका के समक्ष ला सकती है, जिस स्थिति में विधेयक पर चर्चा की जा सकती है और मतदान से पहले उस पर चर्चा की जा सकती है।अध्यादेश बनाने की शक्ति कानून का समानांतर स्रोत नहीं है।ऐसे समय में जब विधायिका का सत्र नहीं चल रहा हो, उस समय लागू की गई संवैधानिक प्रक्रिया में राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश पर विधायिका के संवैधानिक प्राधिकार के साथ अध्यादेश बनाने की शक्ति के प्रयोग के बीच एक अंतःसंबंध स्थापित होता है।

74 विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने में असफलता संवैधानिक दायित्व का गंभीर उल्लंघन है जिसे कार्यपालिका को अध्यादेश को विधायिका के समक्ष रखकर पूरा करना पड़ता है।एक की स्थापना

अध्यादेश संवैधानिक प्रक्रिया को सुगम बनाता है जिसके द्वारा विधायिका अपने नियंत्रण का प्रयोग करने में सक्षम होती है।विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने में विफलता संवैधानिक प्रक्रिया का दुरूपयोग है और यह संवैधानिक दायित्व की गंभीर उपेक्षा है।प्रत्यायोजित विधान के मामले में, संसदीय या राज्य अधिनियमितियां अधीनस्थ विधान को विधायिका के समक्ष रखने की आवश्यकता का उपबंध कर सकती हैं।यह सुस्थापित है कि केवल अधीनस्थ विधान को विधानमंडल के सदन के समक्ष रखने की आवश्यकता है।किंतु जहां अधीनस्थ विधान की अस्वीकृति पर विचार किया जाता है, वहां ऐसा

आवश्यकता अनिवार्य है।क्वारी ओनर्स एसोसिएशन बनाम बिहार राज्य में

इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया:45...----------संसद के सदनों के समक्ष रखने का काम तीन अलग-अलग तरीकों से किया जाता है।कोई भी नियम निर्धारित अवधि के भीतर किसी भी नकारात्मक प्रस्ताव के अधीन हो सकता है या इसकी पुष्टि के अधीन हो सकता है।इसे क्रमशः नकारात्मक और सकारात्मक समाधान के रूप में देखा जाता है।तीसरा, हो सकता है कि हम सदन के सामने सिर्फ भाषण दे रहे हों।वर्तमान मामले में, हम न तो सकारात्मक और न ही नकारात्मक प्रक्रिया से चिंतित हैं, बल्कि केवल विधायिका के समक्ष रखने के परिणाम से चिंतित हैं।----------

निर्णय

48 ----------यदि अपीलार्थियों का प्रस्तुतिकरण स्वीकार कर लिया जाता है कि किसी सदन के समक्ष केवल सूचना के लिए रखा जाना है, तब भी ऐसी जानकारी, इसमें अंतर्निहित रूप से, विधायिका को राज्य सरकार के क्रियाकलापों पर नजर रखने के लिए पूर्वोक्त रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए बनाता है।इस तरह के प्लेसमेंट को नॉन एस्ट नहीं माना जा सकता।संसद के किसी भी अधिनियम का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि उसका कोई उद्देश्य नहीं है।जैसाकि हमने कहा है, केवल चर्चा और इस तरह के रखरखाव के संबंध में सदन में संबंधित मंत्रालय या प्राधिकारी से सवाल पूछने से ऐसा प्राधिकारी सतर्कता के साथ कार्य करने के लिए सतर्क रहेगा जो ऐसे प्राधिकारी पर एक नियंत्रण है,

विशेष रूप से जब ऐसा प्राधिकार अन्यथा भी है

ऐसे विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है।(पृष्ठ 689 पर)

75 विधायिका के समक्ष रखे जाने वाले अध्यादेश की अपेक्षा को अधीनस्थ विधान के रखे जाने के समतुल्य नहीं माना जा सकता।एक अध्यादेश राज्यपाल की विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाया जाता है जो अधीनस्थ है न कि ऐसी धारा जो कानून बनाने की शक्ति के समानांतर चलती है जो राज्य विधानमंडलों और संसद में निहित होती है।विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने की संवैधानिक आवश्यकता के किसी भी उल्लंघन को गंभीर संवैधानिक असंतोष के साथ देखा जाना चाहिए।संविधान में इस एक्सप्रेस का उपयोग विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति के संदर्भ में या अस्वीकृति के प्रस्ताव के परिणामस्वरूप किया गया है।निर्माताओं ने विधायिका के समक्ष रखे जाने वाले अध्यादेश की एक अनिवार्य आवश्यकता पेश की, जिस पर विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के समान प्रभाव और बल होगा, बशर्ते कि यह विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर या इससे पहले, यदि अस्वीकृति का कोई प्रस्ताव पारित किया जाता है, तो यह लागू नहीं होगा।अतः यह प्रावधान विधायिका के समक्ष रखे जाने वाले अध्यादेश की मूलभूत आवश्यकता पर आधारित है।यदि कार्यपालिका विधायिका के समक्ष अध्यादेश प्रस्तुत करने के अपने बिना शर्त दायित्व का पालन करने में विफल रही है, तो अध्यादेश को विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के समान बल और प्रभाव देने वाली कल्पना अस्तित्व में नहीं आएगी।जिस अध्यादेश को अभी तक विधायिका के समक्ष नहीं रखा गया है, वह नहीं हो सकता है

(क) वही बल और प्रभाव होगा जो किसी अधिनियमित विधि का है और उसका कोई परिणाम नहीं होगा.

संविधान में ऐसी स्थिति के संबंध में कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया है जहां कोई अध्यादेश किसी विधायिका के समक्ष बिल्कुल भी प्रस्तुत नहीं किया जाता है।इस तरह की स्थिति की तुलना ऐसी स्थिति से नहीं की जा सकती है जहां एक अध्यादेश निर्धारित अवधि के बाद समाप्त हो जाता है या अस्वीकृत हो जाता है।यह अधिदेश कि अध्यादेश लागू नहीं होगा, उन दोनों स्थितियों पर लागू होता है।किसी अध्यादेश को विधायिका के समक्ष बिल्कुल भी नहीं रखना संवैधानिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है, संवैधानिक दायित्व का पालन करने में विफलता है।जो सरकार अपने संवैधानिक कर्तव्य का पालन करने में विफल रही है और विधायिका की अवहेलना की है, वह वैध रूप से यह दावा नहीं कर सकती कि वह जिस अध्यादेश को लाने में विफल रही है, वह तब तक वैध है, जब तक वह काम करना बंद नहीं कर देती।अधिकारों और दायित्वों की एक इमारत का निर्माण ऐसे कार्यों पर संवैधानिक आदेश में नहीं किया जा सकता, जो सत्ता के साथ धोखाधड़ी के समान हों।यह कानून के शासन के लिए विनाशकारी होगा।एक बार जब कोई अध्यादेश विधायिका के समक्ष रखा जाता है, तो वह संवैधानिक कल्पना, जिसके द्वारा वह कानून के समान बल और प्रभाव रखता है, अस्तित्व में आ जाता है और अध्यादेश के प्रख्यापन से संबंधित हो जाता है।विधायिका के समक्ष रखने की अनिवार्य संवैधानिक आवश्यकता के अनुपालन के अभाव में संवैधानिक कल्पना अस्तित्व में नहीं आएगी।वर्तमान मामले में, बिहार के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित किसी भी अध्यादेश को राज्य विधानसभा के समक्ष नहीं रखा गया था।यह संवैधानिक शक्ति के साथ धोखाधड़ी है।संवैधानिक रूप से, किसी भी अध्यादेश का कोई प्रभाव नहीं था।ध्यान देने योग्य बात यह थी कि विधायिका से बचना और

विधायी नियंत्रण से बचना।यह संवैधानिक प्रक्रिया का गंभीर दुरुपयोग है।यह किसी भी कानूनी रूप से बाध्यकारी परिणाम को जन्म नहीं देगा।

एम-वर्तमान मामले में पुनः घोषणा

76 डी. सी. वाधवा वाले मामले में संविधान पीठ का निर्णय 20 दिसंबर, 1986 को दिया गया था।संविधान पीठ ने संवैधानिक सिद्धांत के रूप में यह स्पष्ट कर दिया कि कार्यपालिका अध्यादेशों को फिर से लागू करने के बहाने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बाधित नहीं कर सकती।

संविधान पीठ ने कहा कि विधायिका को नजरअंदाज करना और अध्यादेश फिर से लागू करना सरकार के लिए शक्ति का एक बड़ा प्रयोग होगा।शायद इस निर्णय की आलोचना में औचित्य है कि संविधान पीठ ने अंततः इस मामले को (बिहार के एक अध्यादेश को, जो अभी भी इस क्षेत्र में था, अमान्य घोषित करने के बाद) आशा की अभिव्यक्ति पर छोड़ दिया, जो इस प्रकार हैः

हम आशा करते हैं और विश्वास करते हैं कि ऐसी प्रथा नहीं चलेगी। भविष्य में और जब भी

अध्यादेश लाया जाता है और सरकार चाहती है कि लागू अध्यादेश के प्रावधानों को जारी रखना विधायिका के पुनः समवेत होने के पश्चात् विधेयक उन्हें अधिनियमित करने के लिए विधायिका के समक्ष लाया जाए। एक अधिनियम में प्रावधान.नहीं होना चाहिए। देश में अध्यादेश-राज हो।

77 संविधान पीठ ने एक अपवाद को रेखांकित किया जहां राज्यपाल द्वारा एक अध्यादेश फिर से प्रख्यापित किया जा सकता है जहां सरकार के लिए किसी विशेष सत्र के लिए विधायी कार्य की अधिकता के कारण एक अध्यादेश के समान प्रावधानों वाले विधेयक को विधायिका में पेश करना और पारित करना संभव नहीं है।इस अपवाद की निम्नलिखित पर आलोचना की गई हैः

इस आधार पर कि चाहे वर्तमान विधायी कार्य कितना ही दबाव वाला क्यों न हो, किसी अध्यादेश को विधायिका के अधिनियमन में परिवर्तित करने के लिए विधायी सत्र के विस्तार की मांग करना सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है।इसके अलावा, यह भी सवाल उठाया गया है कि क्या पुनर्गठित अध्यादेश तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता पर राज्यपाल की संतुष्टि से संबंधित परिस्थितियों के अस्तित्व की बुनियादी संवैधानिक आवश्यकता को पूरा करेगा।चाहे जो भी हो, वर्तमान मामले में बिहार राज्य का यह मामला नहीं है कि अध्यादेशों की श्रृंखला को जारी रखने के लिए कोई कारण या औचित्य था और न ही संवैधानिक आवश्यकता से जुड़ी अपवादात्मक परिस्थितियों को इंगित करने के लिए न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री है.

78 दो विद्वान न्यायाधीशों (न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर और न्यायमूर्ति वाधवा) ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में सहमति व्यक्त की कि पहले के बाद जारी किए गए अध्यादेश संवैधानिक शक्ति के साथ धोखाधड़ी के बराबर होंगे।हालांकि पहले अध्यादेश की वैधता के बारे में उनमें मतभेद

था।न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर ने कहा कि सभी अध्यादेश अनुच्छेद 213 की योजना को निरस्त करने के लिए बनाए गए कार्यों की श्रृंखला का हिस्सा हैं।इस दृष्टिकोण से, चौथे और बाद के अध्यादेशों की योजना में कुछ विचलनों के बावजूद, प्रत्येक अध्यादेश ने एक-दूसरे से रंग लिया।इस पूरी कवायद को अनुच्छेद 213 द्वारा प्रदत्त शक्ति के साथ धोखाधड़ी माना गया क्योंकि कार्यपालिका का कोई भी अध्यादेश विधायिका के समक्ष रखने का कोई इरादा नहीं था।दूसरी ओर, न्यायमूर्ति वाधवा ने यह विचार व्यक्त किया कि पहले अध्यादेश का प्रभाव स्थायी प्रकृति का था और उन्होंने कहा कि जो पहला अध्यादेश बनाया गया था वह पूरा हो गया था और इसका प्रभाव अपरिवर्तनीय था।इस दृष्टि से, अध्यादेश एक अस्थायी कानून की तरह था जिसमें

अपने उद्देश्य को पूरा किया।न्यायमूर्ति वाधवा ने कहा कि एक बार संपत्ति राज्य में निहित हो जाने के बाद निहित अधिकारों को छीनने के लिए एक स्पष्ट कानून होना चाहिए।कर्मचारियों को प्रदान किए गए अधिकारों को एक स्थायी चरित्र के रूप में अभिनिर्धारित किया गया था जिसे केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता था क्योंकि यह अध्यादेश एक अस्थायी कानून की तरह काम करना बंद कर देता था।

79 हम पहले ही अस्थायी कानून के सादृश्य पर आधारित स्थायी अधिकार सिद्धांत को निरस्त करने के लिए कारण बता चुके हैं।इसके अतिरिक्त, जैसाकि हमने संकेत किया है, यह कहना सही नहीं होगा कि ये स्थायी अधिकार केवल पूर्वव्यापी प्रभाव से अधिनियमित विधायिका के एक अधिनियम द्वारा ही समाप्त किए जा सकते हैं।मूल दुर्बलता यह है कि पहले अध्यादेश सहित कोई भी अध्यादेश विधायिका के समक्ष नहीं रखा गया।यह एक अनिवार्य संवैधानिक आवश्यकता का मूलभूत उल्लंघन था।सभी अध्यादेश एक संयुक्त योजना का हिस्सा थे जिसके द्वारा बिहार के राज्यपाल ने अध्यादेश को लागू किया और फिर से लागू किया।वो चेन या लिंक पहले अध्यादेश के लागू होने के साथ ही शुरू हो गया था।इसलिए, चीजों की प्रकृति में पहले अध्यादेश को अलग करना संभव नहीं होगा क्योंकि यह अध्यादेशों की श्रृंखला या लिंक का एक आंतरिक हिस्सा है, जिनमें से प्रत्येक और जो मिलकर संवैधानिक शक्ति के साथ धोखाधड़ी का गठन करता है।

एन निष्कर्ष

80 सारांश में, इस निर्णय में निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

(i) अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति और अनुच्छेद 213 के अधीन राज्यपाल को प्रदत्त शक्ति विधायी प्रकृति की है।शक्ति है।

प्रकृति में सशर्त:इसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब विधायिका सत्र में न हो और राष्ट्रपति या राज्यपाल, जैसा भी मामला हो, की संतुष्टि के अधीन हो कि ऐसी परिस्थितियां मौजूद हैं जिनके कारण तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है

(ii)

एक अध्यादेश जो अनुच्छेद 123 या अनुच्छेद 213 के तहत प्रख्यापित किया गया है,

विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह के बाद अथवा इससे पहले भी यदि इसका अनुमोदन करने वाला कोई प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है तो यह प्रभाव समाप्त हो जाएगा। इसके अलावा, एक अध्यादेश को भी वापस लिया जा सकता है

(iii)

एक अध्यादेश के बल पर संवैधानिक कल्पना, और

यदि अध्यादेश को विधिमान्य रूप से प्रख्यापित किया गया है और यह अनुच्छेद 123 और 213 की अपेक्षाओं का अनुपालन करता है तो यह प्रभाव विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के रूप में अस्तित्व में आता है।

(iv)

अध्यादेश बनाने की शक्ति राष्ट्रपति या

राज्यपाल को कानून बनाने का एक समानांतर स्रोत या एक स्वतंत्रता विधायी प्राधिकारी नहीं बनाया गया है।

(v)

विधायी सर्वोच्चता के सिद्धांत के अनुरूप,

अध्यादेश जारी करना विधायी नियंत्रण के अधीन है।राष्ट्रपति या राज्यपाल, जैसा भी मामला हो, मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करते हैं जो विधायिका के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी के लिए उत्तरदायी है

(vi)

संसद या राज्य के विधान मंडल समक्ष अध्यादेश प्रस्तुत करने की आवश्यकता

विधायिका एक अनिवार्य संवैधानिक दायित्व है जो सरकार पर डाली गई है।विधायिका के समक्ष अध्यादेश रखना अनिवार्य है क्योंकि

(vii) विधायिका को यह निर्धारित करना होगाः (क) अध्यदेश को घोषणा करने की वैधता एवं फायदे(ख) क्या अध्यादेश को अनुमोदित किया जाना चाहिए या अस्वीकृत किया जाना चाहिए (ग) क्या अध्यादेश के उपबंधों को सम्मिलित करने वाले अधिनियम को (संशोधनों के साथ या बिना) अधिनियमित किया जाना चाहिए

विधायिका के समक्ष अध्यादेश लाने की आवश्यकता का अनुपालन करने में विफलता एक गंभीर संवैधानिक उल्लंघन और संवैधानिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है

"" "(viii) अध्यादेशों को फिर से लागू करना संविधान के साथ धोखाधड़ी है और लोकतांत्रिक विधायी प्रक्रियाओं का एक उप-संस्करण है, जैसा कि" "" "डी सी वाधवा" "" "मामले में संविधान पीठ के फैसले में निर्धारित किया गया है" ""

अनुच्छेद 213 (2) (ए) में प्रावधान है कि इसके तहत एक अध्यादेश जारी किया गया है

(ix)

(क) यदि विधान-मंडल में इसे अस्वीकृत करने वाला संकल्प पारित कर दिया जाता है तो विधान-मंडल के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह के पश्चात् या उससे भी पहले अनुच्छेद " प्रवर्तन में नहीं रहेगा "।"संविधान ने" "निरस्त" "(अनुच्छेद 252,254,357,372 और 395) और" "अमान्य" "(अनुच्छेद 13,245,255 और 276) जैसी विभिन्न अभिव्यक्तियों का उपयोग किया है।"इनमें से प्रत्येक अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट अर्थ है।अनुच्छेद 123 और 213 में “प्रवर्तन में नहीं” अभिव्यक्ति का अर्थ यह नहीं है कि विधायिका के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की अवधि की समाप्ति पर या अस्वीकृति के किसी संकल्प को पारित किए जाने

पर, अध्यादेश आरंभ से ही शून्य माना जाएगा।अनुच्छेद 123 और 213 दोनों में एक अलग प्रावधान है जिसमें उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनमें कोई अध्यादेश शून्य होगा।एक अध्यादेश ऐसी स्थिति में शून्य होता है जहां यह ऐसा प्रावधान करता है जो संसद सक्षम नहीं होगी

(अनुच्छेद 123 (3)) को अधिनियमित करने या ऐसा प्रावधान करने में जो राज्यपाल द्वारा अनुमोदित राज्य विधानमंडल के किसी अधिनियम में अधिनियमित किए जाने पर वैध नहीं होगा (अनुच्छेद 213 (3))।"" "एक ही प्रावधान में" "" "बंद हो जाना" "" "और" "" "शून्य" "" "अभिव्यक्ति का उपयोग करने के बाद, वे उसी अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकते हैं" ""

स्थायी अधिकारों का सिद्धांत जो निर्णय में निर्धारित किया गया है

(x)

श्री भूपेन्द्र कुमार बोस और श्री टी. वेंकट रेड्डी द्वारा किया गया।

संविधान पीठ अस्थायी अधिनियमिति के सादृश्य पर आधारित है।अध्यादेश और अस्थाई कानून में बुनियादी अंतर होता है।संविधान पीठ के ये निर्णय, जिन्होंने स्थायी अधिकारों की धारणा को स्वीकार किया है, जो एक अध्यादेश के बाद भी जीवित रहेंगे, जो अब तक लागू नहीं रहे हैं, सही स्थिति को निर्धारित नहीं करते हैं।एस. आर. बोम्मई के फैसले के मद्देनजर फैसले अब अच्छे कानून नहीं हैं

(xi)

अनुच्छेद 123 और अनुच्छेद 213 में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है।

ऐसे अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों और देनदारियों की बचत जो किसी ऐसे अध्यादेश के अधीन उद्भूत हुए हैं, जो प्रचालनहीन हो गया है.तथापि, ऐसे उपबंध विशेष रूप से संविधान के अन्य अनुच्छेदों जैसे अनुच्छेद 249 (3), 250 (2), 357 (2), 358 और 359 (1 ए) में अंतर्विष्ट हैं।तथापि, यह निश्चायक नहीं है और मुद्दा अनिवार्य रूप से विधायी सर्वोच्चता और विधि के शासन को विहित करते हुए 'बल और प्रभाव' खंड को अंतर्वस्तु देने का एक मुद्दा है। लागू किया जाने वाला उचित परीक्षण निम्नलिखित का परीक्षण है

लोक हित और संवैधानिक आवश्यकता.इसमें यह मुद्दा भी शामिल होगा कि क्या अध्यादेश के तहत होने वाले परिणामों ने एक अपरिवर्तनीय स्वरूप धारण कर लिया है।किसी उपयुक्त मामले में, यह न्यायालय के लिए स्वतंत्र होगा कि वह राहत सामग्री को ढाले और

(xiii) अनुच्छेद 123 के तहत राष्ट्रपति और अनुच्छेद 213 के तहत राज्यपाल की संतुष्टि न्यायिक समीक्षा से मुक्त नहीं है, विशेष रूप से दोनों अनुच्छेदों में खंड 4 को हटाकर संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा लाए गए संशोधन के बाद।परीक्षण यह है कि क्या संतुष्टि कुछ प्रासंगिक सामग्री पर आधारित है।न्यायालय अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए सामग्री की पर्याप्तता या पर्याप्तता का निर्धारण नहीं करेगा।अदालत इस बात की जांच करेगी कि क्या किसी विशेष मामले में संतुष्टि शक्ति के साथ धोखाधड़ी है या किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य से की गई है।दूसरे शब्दों में न्यायिक समीक्षा इस बात की जांच करेगी कि क्या कोई संतुष्टि नहीं था ।

81 हम यह अभिनिर्धारित और घोषित करते हैं कि 1989 के अध्यादेश 32 से आरंभ होकर 1992 के अध्यादेश 2 के अंतिम के साथ समाप्त होने वाले मुद्दों पर प्रत्येक अध्यादेश संवैधानिक शक्ति के साथ छल का गठन करता है।ये अध्यादेश, जिन्हें कभी भी राज्य विधानमंडल के समक्ष नहीं रखा गया था और जिन्हें डी सी वाधवा मामले में इस न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय का उल्लंघन करते हुए फिर से लागू किया गया था, किसी भी कानूनी प्रभाव और परिणामों से वंचित हैं।इन अध्यादेशों से न तो कोई अधिकार सृजित होते हैं और न ही सरकारी कर्मचारियों को कोई दर्जा प्राप्त होता है।हालांकि, हमारे लिए यह घोषणा करके राहत (जो हम करते हैं) को ढालना आवश्यक होगा कि जिन कर्मचारियों के पास वेतन है, उनमें से किसी से भी कोई वसूली नहीं की जाएगी

उच्च न्यायालय के निर्णय में निहित निर्देशों के अनुसरण में अध्यादेशों की अवधि के दौरान भुगतान किया गया था।

82 संदर्भ का उत्तर इन शब्दों में दिया गया है।

83 हम न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए विद्वत अधिवक्ता द्वारा दी गई सक्षम सहायता को स्वीकार करते हैं और उसे महत्व देते हैं:

इस अवसर पर श्री सलमान खुर्शीद, श्री राकेश द्विवेदी, श्री अमरेन्द्र सरन, श्री मुकेश गिरी, श्री सी यू सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री रंजीत कुमार, सॉलिसिटर जनरल उपस्थित थे। उनके उद्योग और अनुसंधान ने हमें बहुमूल्य जानकारी प्रदान की है।

[एस. ए. बोबडे, न्यायमूर्ति]

[आदर्श कुमार गोयल, न्यायमूर्ति]

[उदय उमेश ललित, न्यायमूर्ति]

[डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति]

[एल. नागेश्वर राव, न्यायमूर्ति]

नई दिल्ली।

जनवरी 01, 2017